ओं भूः ओं महः

मानव-धर्म-सार ।

अर्थात्

कलकत्ते में सन् १९१२ में हुई बीसवीं वैश्य-कानफरेन्स
के सभापति देहरादून-निवासी

राजकुमार मोहन बल उपनाम बलदेवसिंह

का

व्याख्यान, जिसका पहला संस्करण "वैश्य धर्म वा
मानव धर्म" नाम से छप चुका है। इसमें वैश्य
ही नहीं किन्तु मनुष्य मात्र के कर्त्तव्यों
का वर्णन है।

इंडियन प्रेस प्रयाग में छपा।

सन् १९१५ ई०

दूसरा संस्करण,
१०००० प्रतियां।

पात्रों को बिना मूल्य वितरण।

पोथी पढ़ पढ़ जग मुवा, पण्डित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय॥

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं। पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः॥
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो। यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥१॥

ओं भूः ओं महः

मानव-धर्म-सार।

अर्थात्

कलकत्ते में सन १९१२ में हुई बीसवीं वैश्य कानफरेन्स के सभापति बलदेव-सिंह का व्याख्यान।

दूसरा संस्करण

इंडियन प्रेस, प्रयाग में छपा

सन् १९१५ ई०।

नोट—हमारे संकेत के अनुसार 'भक्त' और 'पवित्र' आदि शब्द से भक्ति और पवित्रता आदि के प्रभावों को फैलानेवाला और (सखवाली कहानी के अनुसार) सारे संसार को अपने से अच्छा बनानेवाला समझना चाहिये। बल.

न मंत्रं नो यंत्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो। न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथा॥
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं। परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्॥१॥

पंडित वैद्य मशालची, तीनों चतुर कहायें।
औरों को दे चाँदना, आप अँधेरे जायें॥

ओं भूः ओं महः

भूमिका

और

१०००) रुपये की भेंट का विज्ञापन।

यह लेख अब दूसरी बार प्रकाशित होता है। मैं भली भाँति जानता हूँ कि इसमें कई प्रकार की त्रुटियाँ और दोष हैं। प्रथम तो यह पहिली बार भी इतना बड़ा और विस्तृत था कि जितना साधारणत: एक सभापति का भाषण होना नहीं चाहिये था। दूसरे इसकी भाषा भी ललित और मनोहर नहीं है और अब तो यह और भी बड़ा हो गया है। तीसरे इसमें पुनरुक्ति भी बहुत कुछ है। और भाषा आदि के विचार से यह लेख किसी गणना के योग्य नहीं है परन्तु मैं पूर्ण नम्रता लेकिन साथ ही पूर्ण बल के साथ यह निवेदन अवश्य करता हूँ कि इस लेख में जिन सिद्धान्तों और क्रियाओं का वर्णन है उनके विचार से यह इस योग्य अवश्य है कि इसके पढ़ने में समय व्यतीत करना व्यर्थ नहीं समझा जा सकेगा।

इसके विस्तृत होने का एक कारण तो यह है कि मैं कोई अच्छा लेखक नहीं हूँ। दूसरे इसके आदि में जो छोटी सन्ध्या नामक एक क्रिया का विधान है, वह मेरी राय में एक बहुत ही आवश्यकीय विषय है; और उसका केवल वैश्य-कान्फरेन्स के प्रत्येक विचारणीय विषय और

मन्तव्य या रिज़ोल्यूशन से ही नहीं किन्तु मनुष्य-जीवन की सारी बातों से सम्बन्ध है। एक तो उस क्रिया को कुछ विस्तारपूर्वक प्रमाणों और दलीलों सहित लिखना आवश्यक था, दूसरे प्रत्येक विषय के साथ उसको संबन्धित करने के कारण उसको बार बार लिखना पड़ा। पहले संस्करण को तो कान्फरेन्स में पढ़ा जाना था और वह इतना विस्तृत होने पर भी कुछ संक्षिप्त ही रखना पड़ा। दूसरे संस्करण को किसी कानफरेन्स में पढ़ा जाना नहीं है और जो भाव महात्माओं आदि की कृपा से मेरे अन्दर उपस्थित हैं और जिनके कारण मुझको इसी दुःखसागररूपी संसार में बड़ी सुगमता से स्वर्ग का अनुभव और महान् लाभ प्राप्त हो रहा है; उन भावों को मैं अपने इस लेख द्वारा और और जैसे मुझसे बने, जितना मुझसे हो सके, उतना प्रकाशित करना चाहता हूँ और इसलिए पहले की अपेक्षा अबकी बार यह लेख और बड़ा हो गया है।

पुनरुक्ति को मैं अब की बार कुछ कम करना चाहता था परन्तु मुझको यह प्रेरणा हुई कि कम से कम साधारण प्रकार के पाठकों के हृदयों में बिना इस पुनरुक्ति के मेरे मन्तव्यों का भली भाँति उपस्थित होना असम्भव होगा इसलिए मैंने उसको भी रहने दिया।

मेरा यह भी निवेदन है कि यह बात बहुत थोड़े विचार से प्रतीत हो जायगी कि इस लेख का संबन्ध केवल वैश्यों ही से नहीं किन्तु मनुष्यमात्र से है। यह भय मेरे अन्दर अवश्य उत्पन्न होता है कि "छोटे मुँह बड़ी बात" का दोष मुझ पर लगाया जावेगा। परन्तु मैं अपना यह निश्चय प्रकट किये बिना नहीं रह सकता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य, चाहे उसका मत आस्तिक, नास्तिक, जैन, बौद्ध, हिन्दू, सनातनधर्मी, आर्य्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, ईसाई, मुसलमान, यहूदी, पारसी कुछ भी हो और उसके जीवन का लक्ष्य चाहे जो

हो, उन अति सुगम क्रियाओं को करने से जिनका विधान इस लेख में है अपने असली मनोरथों की सिद्धि बड़ी सुगमता से प्राप्त कर सकता है। बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था और मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी, विद्यार्थी, अध्यापक, प्रचारक, उपदेशक, गृहस्थी, साधु, हर प्रकार के दुनियादार, राजा, प्रजा, राज्याधिकारी, पुलिस, फौज आदि, स्वामी, सेवक, पुरुष, स्त्री, राजनैतिक लोग, हर प्रकार के दुःखी, सुखी, मूर्ख, विद्वान, पापी, धर्मात्मा, अमीर, गरीब, सब प्रकार के लोग, बहुत साधारण प्रकार की समझ रखने वाले भी, अपने जीवन के एक एक पल को संसार भर में बड़ी सफलता का लाने वाला समझने के महान आनन्द को लाभ कर सकते हैं और वैश्य लोग और अन्य गृहस्थी सांसारिक लोग अपने कर्तव्यों के पालन और मनोरथों की सिद्धि में अमूल्य सहायता पा सकते हैं, यदि वे उन अति सुगम और परम हर्षदायिनी क्रियाओं को काम में लावें कि जिनके विषय में मैं कहा करता हूँ कि समझने और बर्ताव में लाने के लिए उनसे सुगम और कोई बात हो ही नहीं सकती है और जिनका वर्णन इस लेख में है। यह सच है कि जैसा कि एक बी० ए० पास महाशय (Graduate) इन क्रियाओं का वर्णन मुझसे सुन कर बड़े हर्ष के साथ चिल्ला उठे थे कि "Hallo, the problem of life is solved" अर्थात् "जीवन का उद्देश्य तो सिद्ध हो गया है"। वास्तव में उस परमेश्वर, परम प्रेमी जगत्पिता ने अपनी सन्तान के परम मंगल के लिए अति सुगम उपाय निर्माण किये हैं। उसकी जय हो! जय हो!

मैं समझता था कि मेरे उक्त कथन पर कहीं कहीं बड़ी हँसी उड़ाई जायगी और बड़े बड़े कटाक्ष किये जाँयगे, परन्तु पहले संस्करण का जैसा आदर हुआ है वह पूर्ण संतोष-जनक न होने पर भी अच्छा ही हुआ है। हास्य और कटाक्ष तो सदैव से होते रहे

हैं और मुझको इनकी कुछ भी परवाह नहीं है। मुझको जो मेरा धर्म्म और कर्तव्य प्रतीत होता है उसको मैं शान्ति के साथ करता रहना चाहता हूँ उसमें किसी के हास्य आदि के भय से कमी करना मैं महापाप समझता हूँ।

मैं फिर कहता हूँ कि इस लेख में जो सिद्धान्त लिखे गये हैं वे बहुत ही अधिक आदर के योग्य हैं और वे लोग बड़े दया के पात्र होंगे जो यह समझ कर इनसे लाभ न उठावेंगे कि यह लेख एक साधारण ही नहीं किन्तु मुझ जैसे तुच्छ मनुष्य का लिखा हुआ है। उन महाशयों से मेरा निवेदन यह है कि यह लेख मेरा लिखा हुआ ज़रूर है परन्तु इसमें भाव और सिद्धान्त वे हैं जो मैंने जहाँ तहाँ से प्राप्त किये हैं और इसलिए इसका असली लेखक मुझको न समझ कर इसको एक बार पढ़ कर तो देखें, पसन्द न हो तो रद्दी कागज़ का टोकरा तो आपके पास है।

साथ ही मुझको अपने पिता परमात्मा पर पूर्ण विश्वास है और मुझको निश्चय है कि, मेरे जीते जी, भी बहुत काम होगा और हो रहा है। परन्तु पूरी क़दर इस लेख की मेरे इस लोक से चले जाने के पश्चात् तो अवश्य ही होगी और मेरा वसुधारूपी कुटुम्ब पूरा लाभ उठावेगा।

جیتے جي قدر بشر کي نہیں ھوتي پیارو
یاد آویگي تمہیں میري وفا میرے بعد

अपने क़दरदानों से मेरी प्रार्थना है कि इस लेख में जो कहानियाँ आदि का हवाला दिया गया है, वे शनैः शनैः मुद्रित होंगी और उनको वे अवश्य कृपा कर मुझ से मँगा कर पढ़ें। उनसे इस लेख के मन्तव्यों के अनुभव में उनको बहुत सहायता मिलेगी। और और

प्रकार से भी उनको बहुत आनन्द आवेगा। वे बहुत थोड़े २ दामों के छोटे २ लेख होंगे जो ग़रीब आदमियों को बिना दामों के ही दिये जावेंगे।

पहले संस्करण की भूमिका के साथ मैंने एक विज्ञापन दिया था पर कोई कथनयोग्य लेख मेरे पास भेंट के दावे के लिए नहीं आया और अब मैं उस विज्ञापन को फिर दोहराता हूँ और बहुत शुद्ध भाव और पवित्र मन से निवेदन करता हूँ, कि मैं बड़ी प्रसन्नता से और परम कृतज्ञता में भर कर १०००) रुपया, उस महाशय के चरणों में भेंट करूंगा कि जो जिनका इस लेख में वर्णन है। २४ जून सन् १९१६ तक मेरे पास सब से अच्छी ऐसी क्रियाओं को लिख कर भेजें कि जो समझने और बर्ताव में लाने में उन क्रियाओं, उनके सिद्धान्तों और उनके सार की अपेक्षा अधिक सुगम और हर्षजनक हों और जिनके फल और परिणाम वैसे ही या उनसे अधिक उत्तम हों कि, परन्तु इस बात का फ़ैसला मेरे ही हाथ में होगा कि कोई लेख, इस भेंट का अधिकारी है या नहीं और यदि है तो कौन सा है।

मैं सब मजहब वालों के उन महापुरुषों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि जिनके वचनों, लेखों और शिक्षाओं से मेरे अन्दर पूर्वोक्त सुन्दर और परम आनन्दजनक भाव उत्पन्न हुए हैं। उनके बहुत से वचन मैंने इस लेख में भी मुद्रित किए हैं। उन वचनों से बड़ा लाभ पहुँचने की आशा है।

इस लेख को उर्दू और अँग्रेज़ी में भी छपवाने का मेरा संकल्प है।

सारे संसार का सेवक

मोहिनीभवन, देहरादून
मार्च १९१५।

राजकुमार मोहनबल
उपनाम बलदेवसिंह।

ओं भूः ओं महः

मानव-धर्मसार का

सूचीपत्र

व्याख्यान

"पिताजी सब आप के भक्त बनजायें" कहने के फल और बधाइयाँ

पृष्ठ

पृष्ठ

कान्फ़रेन्स की काररवाई

साधारण विचार

प्रेम और एकता

हिंदी-शिक्षा

स्त्रीशिक्षा

कुरीति-सुधार

दान-प्रणाली

पृष्ठ

पृष्ठ

दानधर्म महासभा नियत करना।

पृष्ठ

पृष्ठ

पृष्ठ

पृष्ठ

शरणागत धर्म

पृष्ठ

बालशिक्षा

ओ३म् भूः

हरिः ओ३म् तत्सत् ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

पिता जी सब आप के भक्त बन जावें ।

वैश्य कानफरेंस कलकत्ते के

सभापति का व्याख्यान ।

मंगलाचरण ।

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव तारावलं चन्द्रबलं तदेव ।
विद्याबलं सर्वबलं तदेव लक्ष्मीपतेर्यं हि युगं स्मरामि ॥ १

अर्थ—वही सच्ची लग्न है, वही शुभ दिन है, वही तारा-बल और चन्द्र-बल है (अर्थात् उसी समय हमारे नक्षत्र और चन्द्रमा अच्छे हैं) और वही सच्चा विद्या-बल और सब प्रकार का बल है कि जब हम लक्ष्मीपति भगवान् का स्मरण करते हैं ॥ १ ॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥२॥

अर्थ—कोई भी मनुष्य चाहे वह पवित्र हो चाहे अपवित्र और कैसी भी बुरी भली दशा में क्यों न हो यदि पुण्डरीकाक्ष का स्मरण करे तो वह भीतर बाहर सब तरह शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार पुण्डरीकाक्ष के समान यदि हम अपनी प्यारी माता का स्मरण करें तो भी हम भीतर बाहर शुद्ध हो जाते हैं ॥ २ ॥

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात् ।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ ३ ॥

अर्थ—जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य जन्म और संसार के बंधन से छूट जाता है उस विष्णु भगवान् को बारंबार नमस्कार है ॥३॥

स्मृतेः सकलकल्याणभाजनं यस्य जायते ।
पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥ ४ ॥

अर्थ—जिसके स्मरण से (यह चराचर) सब मङ्गलों का भाजन होता है उसी अजन्मा और शाश्वत पुरुष हरि की शरण में मैं जाता हूँ ॥ ४ ॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ५ ॥

अर्थ—जैसे जो कार्य्य कूपादि छोटे छोटे जलाशयों से सिद्ध होते हैं वे ही कार्य्य एक बड़े जलाशय से सहज में हो सकते हैं, इसी प्रकार जो कार्य्य सम्पूर्ण वेदों के जानने से सिद्ध होता है वह केवल एक ब्रह्म के जानने से हो जाता है ॥ ५ ॥

ओं त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो।
वभूविथ अथाते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥

अर्थ—हे सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, हे सारे संसार के प्रबन्ध करने के लिये अनेकानेक कार्यों के करनेवाले, आपही हमारे पिता हो, आप ही हमारी माता हो और आप ही इन्द्र हो इस लिये हम आप से मङ्गल करने की प्रार्थना करते हैं ॥६॥

श्रीभगवानुवाच।

यो मां नामसहस्रेण स्तोतुमिच्छति पाण्डव।
सोऽहमेकेन श्लोकेन स्तुत एव न संशयः ॥ ७ ॥

अर्थ—जो कोई सहस्र नाम द्वारा मेरी स्तुति करने की इच्छा करता है, वह केवल एक श्लोक द्वारा मेरी स्तुति कर मुझे प्रसन्न कर सकता है। (एक श्लोक की क्या बात है, मनुष्य की मेरी ओर इच्छा होते ही मैं प्रसन्न हो जाता हूँ) ॥ ७ ॥

महादेव महादेव महादेवेति यो वदेत्।
एकेन मुक्तिमाप्नोति द्वाभ्यां शम्भू ऋणी भवेत् ॥८॥

अर्थ—"महादेव, महादेव, महादेव", इतना जो कोई कह देता है अर्थात् यदि कोई भगवान् विश्वनाथ का प्यारा पुत्र उसका नाम तीन बार उच्चारण कर देता है तो एक बार के कह देने (अर्थात् एक बार उसका नाम लेने) से तो उसकी मुक्ति हो जाती है (या अपने अनन्त प्रेम के कारण वह मुक्ति के भंडारों को अपने प्यारों पर एक सच्चे प्रेमी के समान न्योछावर करता प्रतीत होता है) और दो बार जो और

उसका नाम उच्चारण हुआ तो (और तो कुछ देने को रहा नहीं दिवाला निकल गया) बस शंभु ऋणी बन जाते हैं ॥ ८ ॥

एक पंजाबी वचन है:—

कुर्बानी जाऊं तिनांदे लेंण जो तेरा नांव् ॥ ९ ॥

रामायण का वचन है:—

जाकी कृपा लवलेशतें मतिमन्द तुलसीदासहू ।
(यह बलदेवहू)
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ ॥ १० ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥११॥

अर्थ—जिन भक्तजनों के हृदय-मंदिर में नीले कमल के समान शोभायमान श्याम जनार्दन विराज रहे हैं उन महात्माओं को सर्वत्र लाभही लाभ है । उनकी सदा जयही जय है और उनका कभी पराजय नहीं हो सकता ॥ ११ ॥

ग्रन्थसाहिब का वचन है:—

सर्व रोग को औषध नाम ॥ १२ ॥

गुरु नानकदेवजी का वचन है:—

नानक दुखिया सब संसार,
सो सुखिया जो नाम अधार ॥१३॥

१४ شعر - رو بدرگاهش کے آوردي که گشتي نا اميد
گر گدا کاهل بود تقصير صاحب خانه چيه

१५ شعر - این درگه ما درگه نا اُمیدي نیست
صد بار اگر توبه شکستي باز آ

१६ شعر - آسمان سجده کند روے زمین را که برو
یك دو کس یك دو نفس بهر خدا بنشینند

१७ عربي کا بچن - قلوب‌المومنین - عرش الله تعالی
(بشواسیوں کے هردے - ایشور کے لو استهان هوتے هیں)

स नः पितेव सुनवे ऽग्ने सुपायनो भव ।
स च स्वानः स्वस्तये ॥ १८ ॥

अर्थ—हे अग्ने ! जिस प्रकार पिता पुत्र को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार हमारे लिये आप प्राप्त होने योग्य हैं । आप सुखसम्पादन के लिये हमको अपने साथ संबद्ध कीजिये ॥ १८ ॥

वेदमंत्र ।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ १९ ॥

अर्थ—मैं (इस ज्ञान स्वरूप और प्रत्यक्ष व्यापक) महान् पुरुष को सूर्य्य के समान परम प्रकाश रूप और अंधकार से परे जानता हूँ और उस परमात्मा को ऐसा जान कर ही मनुष्य मृत्यु को तर कर मुक्त होता है और मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है ॥ १९ ॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥२०॥

अर्थ—सब धर्मों को छोड़ कर (अर्थात् यदि धर्म पर चलने में तू अपने को असमर्थ समझता है तो इसकी कुछ परवाह न करके तू) एक मात्र मेरी शरण में (क्या बल्कि मेरी गोद में) आ जा ? मैं तुझे सब पापों से दूर कर दूँगा अर्थात् धर्म पर चलनेवाला बना दूँगा । तू घबरा मत (प्रसन्न हो जा) ॥ २० ॥

ईश्वर का वचन मनुष्य के प्रतिः—

वह मुस्कराता मुखड़ा सन्मुख रहे हमारे ।
इसकी एवज़ में चाहे सर्वस्व ले ले सारा ॥ २१ ॥
चार पदारथ पुत्र हित, लिये खड़े अकुलात ।
ज्यों सुत को भोजन लिये, करत चिरौरी मात ॥ २२ ॥

वेद का वचन है—

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे ॥२३॥

अर्थ—सब प्राणियों को मित्र की यानी प्रेम की आँख से देखना चाहिये ॥ २३ ॥

२४ شعر - گر نور عشق حق بدل و جانت افتد
بالله کز آفتاب فلک خوب تر شوي

२५ شعر ديگر - از پاے تا سرت همه نور خدا شوي
در راه ذوالجلال تو بے سر و پا شوي

२६ شعر ديگر - بعد ازين نور به آفاق دهم از دل خويش
که به خورشيد رسيديم و غبار آخر شد

सर्वस्याभिभवं हीच्छेत् पुत्रादिच्छेत्पराभवम् ॥२७॥

अर्थ—(मनुष्य) सबसे बड़ा होने की इच्छा करे और पुत्र को अपने से भी बड़ा बनाने का यत्न करे ॥ २७ ॥

ईश-वन्दना

धन्य हैं आप प्यारे पिता जी ! इससे अधिक शांति के देनेवाले वचन सुनने की हम क्याइच्छा कर सकते हैं कि जैसे इन ऊपर के वेद, पुराण, गीता आदि के उद्धृत अंशों में हैं। अहा, कैसा उच्च अधिकार मनुष्य को आपसे प्राप्त हुआ है ! ! आप मनुष्य का कितना अधिक आदर करते हैं ! बहुत लोग किसी राजा आदि के साथ साधारण परिचय आदि हो जाने ही से बड़ा आनन्द मानते हैं और अपना अहोभाग्य समझने लगते हैं। परन्तु हे राजों के राजा और महाराजों के महाराजा ! हमको यह अधिकार प्राप्त है और इस अधिकार को काम में लाने के लिये अपने अनन्त प्रेम के वशीभूत होकर मानो आप हमारी चिरौरी करते हैं कि हम जब चाहें आपके चरणों में अपने को पुत्रों के समान बैठे हुए और आपके आशीर्वाद का हाथ अपने सिरों पर बड़े प्रेम और आनन्द से फिरता हुआ पावें और अपने को कृतकृत्य और परमोत्तम दशा को प्राप्त हुआ देखें। यदि किसी अपवित्र स्त्री अथवा पुरुष का चिंतन या स्मरण हमको तत्काल अपवित्र बना देता है; यदि कोई बुरा संकल्प या इच्छा हमको तत्काल अपवित्र बनादेती है तो निश्चय ही प्यारे पिता जी ! आप जो महान् पवित्र हैं, आपका स्मरण और जिस प्रकार की इच्छा से हम यहाँ एकत्र हुए हैं वह इच्छा, अवश्यमेव हमको परम पवित्र और आपके सम्पूर्ण आशीर्वाद का पात्र और अनेकानेक गुणों से संयुक्त ही नहीं किन्तु हमको महान् उत्तमोत्तम गुणों का केन्द्र बना देती है। और जैसे किसी प्लेग के रोगी व्यक्ति से हानि-कारक जर्म निकल निकल कर उसके इर्दगिर्द वालों के लिये हानि-कारक ही नहीं होते किन्तु वे उन्हें ऐसा बना देते हैं कि वे औरों के लिये भी हानिकारक हो जाते हैं, उसी प्रकार हमारे अन्दर से आपके आशीर्वाद के गुणों से संयुक्त जर्म ही नहीं किन्तु उनसे अनेक किरणें,

प्रभाव और लहरें आदि निकल निकल कर इर्द गिर्द ही नहीं किन्तु सारे संसार में अति उत्तम प्रकार का परिवर्तन पैदा करती हुई संसार भर के समस्त चराचरों के प्रत्येक परमाणु तक को अपना जैसा सुगुणयुक्त केन्द्र बना देती हैं। इस समय जिस अभिप्राय या संकल्प को धारण कर हम आपके पुत्र इस स्थान में उपस्थित हुए हैं उसको आप जानते हैं। आप जानते हैं कि हम आज्ञाकारी पुत्रों के समान आपकी आज्ञा पालन करने के लिये इस कानफरेन्स में एकत्र हुए हैं और इसके द्वारा हमारा अभीष्ट केवल वैश्य जाति या हिन्दू जाति अथवा भारतवर्ष के राजा प्रजा की या मनुष्यमात्र ही की नहीं किन्तु आपके और अपने सारे वसुधा रूपी कुटुम्ब और सारे संसार के चराचर की उन्नति करना है। और कौन ऐसा पिता है जो अपने बच्चों के हृदयों में ऐसे संकल्पों को उत्पन्न होते देखकर अत्यंत प्रसन्न और उन्हें इन संकल्पों के पूरा करने के लिये प्रयत्न करते देखकर पूर्ण सन्तुष्ट न होवे ? हम अपने आपको धन्य धन्य कहते हैं कि हम निःसन्देह इस समय आपके महा आनन्द के कारण और आपके सम्पूर्ण आशीर्वाद के पात्र बने हुए हैं। आपके आशीर्वाद पर भरोसा रख कर हमको कोई भी संदेह करने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि हमारे परिश्रम अच्छी तरह और पूर्ण रूप से सफल होंगे। यह सफलता चाहे हमारे मन-चाहे प्रकार से अथवा इसी समय प्राप्त न हो परन्तु किसी न किसी प्रकार से और अब नहीं तो शीघ्रही किसी भविष्यत् काल में अवश्य-मेव प्राप्त होगी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। अहा ! पवित्र संकल्पों के कैसे महान् फल हैं ! इन संकल्पों मात्र से हम आपके आशीर्वाद के पात्र अपने आपको समझने के योग्य बन जाते हैं ! और कैसा आनन्द है आपके पित्राशीर्वाद में विश्वास रखने में ! और कैसा आत्मिक, मानसिक और शारीरिक आदि बल और

गुण इस आनन्द से हमारे अन्दर आते हैं कि जो हमें अपने कर्तव्यों के पालन करने में महान् सहायता के कारण होते हैं ! सत्य है उस परम पिता परमेश्वर में विश्वास न करना ही एकमात्र पाप है और यह हमारे प्रयत्नों की सफलता में भी रुकावट का कारण समझा जाने के योग्य है । ओ३म् शान्तिः ! ३ ॥

व्याख्यान

परम प्रियवर, परम मान्यवर, वृद्धो, महाशयो, भाइयो, और बहिनो ! परम पिता परमेश्वर के सुयोग्य पुत्रो और पुत्रियो, ईश्वर के नन्दनो और नन्दनियो ! शब्द सर्वथा असमर्थ हैं उस कृतज्ञता के भाव को प्रगट करने में कि जो आप महाशयों की कृपा ने, आपकी ऐसी गुण-ग्राहकता, ऐसे सच्चे प्रेम और आपके ऐसे आदर और सन्मान ने मेरे हृदय में उत्पन्न किया है। यदि मैं यह कहूँ कि मेरे शरीर का रोम रोम कृतज्ञता रूप हो रहा है तो इसमें किंचित् मात्र भी संदेह नहीं होना चाहिये । विचार के कानों से आप यदि काम लें तो आप को मेरा रोम रोम आपके धन्यवाद के गीत गाता हुआ प्रतीत होगा । साधारण दृष्टि से देखा जाय तो मेरा इस समय इस कान-फरेन्स के सभापति के पद पर उपस्थित होना एक अत्यन्त आश्चर्य-जनक बात है । भला कहाँ देहरादून जैसा भारतवर्ष के एक कोने में, पहाड़ की तली में, एक छोटा सा स्थान कि जहाँ का मैं निवासी हूँ और फिर कहाँ मैं वास्तव में एक बहुत ही तुच्छ मनुष्य, कि जो पूर्ण दृढ़ कारणों से निश्चय किये हुए हैं कि मुझसे अधिक मूढ़, खोटा, पापी, मनुष्य कोई भी संसार भर में नहीं है, और जिसकी विद्या भी बहुत ही अल्प है और कहाँ सारे भारतवर्ष का शिरोमणि, सब से बड़ा और प्रसिद्ध नगर कलकत्ता और इस कलकत्ते की किसी छोटे

मोटे सभा-समाज में नहीं किन्तु आल-इंडिया वैश्य-कानफरेंस में मैं सभापति बनाया जाऊँ, यह आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

परन्तु वास्तव में धन्य है वह हमारा परम पिता परमात्मा कि जिसके नियम ऐसे सुन्दर और मङ्गलकारी हैं कि जिनके फल बड़े ही उत्तम और महान् हैं और उन पर मुझ जैसे तुच्छ, पापी मनुष्य के लिये भी चलना अति सुगम है। और विचार कियाजाय तो उनके कारण मेरा ऐसे उच्च पद पर उपस्थित होना तो कोई भी आश्चर्य की बात नहीं। यदि आश्चर्य है तो यही कि मैं वर्तमान दशा से और भी अधिक ऊंचा क्यों नहीं दिखाई देता।

जिन नियमों का मैंने अभी ज़िक्र किया है उनको संक्षेप में निवेदन कर देना मैं अत्यन्त आवश्यक समझता हूं। हमारे प्रत्येक मन्तव्य (Resolution) का सबन्ध उनसे है। या यों कहो कि हमारे जीवन की प्रत्येक दशा का, हमारा, इस लोक और परलोक का सबन्ध उनसे है, इससे यह व्याख्यान बड़ा तो हो जायगा परन्तु इसके लाभ को सोचकर मुझको यह करना पड़ता ही है।

प्रथम मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूं कि मैं ईश्वर को एक व्यक्तिविशेष मानता हूं। मैं ईश्वर को भाववाचक नहीं किन्तु सगुण व्यक्ति अथवा व्यक्तित्त्वपूर्ण ईश्वर (Personal God) मानता हूँ। इसका कारण केवल वेद, गीता आदि के ऊपर दिये हुए वचन ही नहीं हैं किन्तु शास्त्रों में अनेक ऐसे वचन भरे पड़े हैं, कि जिन से ईश्वर का पुरुष होना बहुत स्पष्ट रूप से पाया जाता है। उदाहरण के लिए विचार कीजिए कि ईश्वर के विषय में पुरुष, माता, पिता, मित्र, राजा आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। ईश्वर से प्रार्थना करने से यह शिक्षा मिलती है कि वह हमारी बुद्धियों को प्रेरणा करे। प्रेरणा तो पुरुष या व्यक्ति ही कर सकता है और वेदों में

बार बार इस शब्द का प्रयोग हुआ है कि "हे मनुष्यो तुम यह करो वह करो"। इन आज्ञाओं से स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेदादिकों का ईश्वर पुरुष या व्यक्ति है। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न भक्तों आदि की साक्षी प्रमाण है कि जो अपने अनुभव आदि के कारण ईश्वर को व्यक्ति मानते हैं। परन्तु सबसे बड़ा कारण जिससे मैं ईश्वर को ऐसा मानता हूँ मेरा स्वयं अनुभव है और यह मेरे दो चार दस बीस बार की नहीं, किन्तु अनेक बार की परीक्षाओं का फल है। और मेरी तो बुद्धि भी चाहे कितनी ही तुच्छ हो, इस मत के विरुद्ध नहीं किन्तु पूर्णतया अनुकूल है। और मैं इस संबंध में जो कुछ निवेदन करूँगा वह सब वे बातें होंगी कि जिनका अनुभव और ज्ञान मुझको आपकी कृपा से नित्य होता रहता है। पुस्तकों आदि में भी ये बातें हैं परन्तु मैं यहाँ उनका उल्लेख इसलिए नहीं करता कि मैंने ये बातें पढ़ी या सुनी हैं किन्तु केवल इसीलिए कि मैंने उनका स्वयं अनुभव किया है और वे आप बीती हैं।

मेरा निश्चय है कि ईश्वर सर्वव्यापक और परम पवित्र है और उसके अन्दर किसी प्रकार का रागद्वेष, कोई बुरा भाव या कोई अवगुण या बुराई नहीं है। भलाई और गुण उसके अन्दर अनंत हैं और उसकी प्रत्येक भलाई या गुण अखंड और अनंत हैं। माता, पिता आदि के अन्दर उसी प्रेम रूपी सूर्य्य की मानो एक किरण होती है जिसके फल संसार में बड़े विचित्र दिखाई देते हैं। मेरे सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर एक पुरुष है परन्तु है वह अत्युत्तम पुरुष अर्थात् पुरुषोत्तम। वह हमारा पिता और माता है। सांसारिक माता-पिता में और उसमें केवल इतना अन्तर है कि वे व्यक्ति के माता-पिता हैं और वह समष्टि का माता-पिता है पर, वास्तव में तो वे ईश्वर से भी बड़े समझे जाने योग्य हैं। विश्वासी भक्त ने कहा है:—

~~मोरे मन प्रभु अस विश्वासा। राम तें अधिक राम कर दासा॥~~

~~राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरु हरि संत समीरा॥~~

~~और मैं कहता हूँ कि राम के दास से बढ़ कर राम के पुत्र हैं~~
और

सर्वस्याभिभवंहीच्छेत् पुत्रादिच्छेत् पराभवम्॥ अर्थ—

"मनुष्य सबसे बड़ा होने की इच्छा करता है और अपने पुत्र का अपने से बड़ा होना चाहता है"। इसका कारण प्रेम है और वह ईश्वर में अनन्त है।

राम के या ईश्वर के नाम से हृदय पर इतना प्रभाव नहीं पड़ता है कि जितना माता-पिता, भाई, बहिन पुत्र आदि के नाम या शब्द से पड़ता है। इन्हीं नामों से हम ईश्वर को भी पुकार कर प्रेम का अनुभव कर सकते हैं। ईश्वर के नाम की अपेक्षा इन नामों से अघमर्षण* की या ईश्वर की प्रसन्नता की संभावना अधिक है परन्तु साधारण दृष्टि से देखा जाय तो माता-पिता के अन्दर अनेक त्रुटियाँ और न्यूनताएँ हैं, और ईश्वर के अन्दर न्यूनता नहीं किन्तु पूर्णपरिपूर्णता है और मेरा जीवन इस बात का साक्षी है। जहाँ मैं एक ओर कहा करता हूँ कि मुझ जैसा पापी और मूढ़ संसार भर में कोई नहीं है वहाँ मैं उसी सांस में पूरे बल के साथ यह भी कह दिया करता हूँ कि मेरा जीवन एक पुस्तक है। इस मेरी जीवन-रूपी पुस्तक में पढ़लो कि ईश्वर परिपूर्ण है और वह हमारा पिता है, वह हमारी माता है, वह हमारे सुख दुःख में, हमारे गृहस्थ के कामों में, साथी और सहायक है। मैं उस गंज की दवा बेचने वाले के समान नहीं हूँ जो आप गंजा था; जिसकी मिसाल पर विचार

---

*अघमर्षण=पापनाशक

करने से कहा जा सकता है कि जो लोग मेरे समान ईश्वर के नाम-स्मरण आदि के कारण अपने को पवित्र ही नहीं समझते किन्तु बड़े बड़े काम और बहुत काल तक सन्ध्या, तर्पण, होम, तीर्थाटन आदि करते हुए भी अपने को पापी ही कहते और मानते हैं, वे दूसरों को नास्तिक बनाते हैं और उनके जीवन और वचनों से लोगों के अन्दर से सन्ध्या आदि के माहात्म्य का विश्वास निकल कर उनको नास्तिक और निराश बना देता है। तीर्थों के पण्डे आदि जो तीर्थों आदि का माहात्म्य लोगों को बतलाते हैं, वह माहात्म्य उनके जीवनों से प्रकट नहीं होता, और न वे उसमें स्वयं विश्वास कर यह कहने को तैयार होते हैं कि उनके अन्दर वह माहात्म्य आ गया है वे दूसरों को नास्तिक नहीं तो और क्या बनाते हैं ? इसी प्रकार और वस्तुओं के माहात्म्यों के विषय में भी समझ लेना चाहिये। ऐसे ही लोगों पर विचार कर किसी ने कहा है कि:—

पंडित, वैद्य मशालची तीनों चतुर कहायें।
औरों को दें चांदना आप अंधेरे जायें॥

परन्तु मेरी जीवन-रूपी पुस्तक को पढ़ कर आप देख लेंगे कि ईश्वर दुःखविनाशक है, वह भव-भय हारी है, वह पतितपावन है, वह शान्ति का भंडार है, वह सर्वसुखदायक है। उसी के भरोसे आदि पर मैं कहा करता हूँ कि पाप मर गया, दुःख विदा हो गया, और मृत्यु का नाश हो गया है। (देखो ट्रैक्ट "मृत्यु का नाश हो गया" जो शीघ्र छपेगा।) वर्तमान पाप, दुःख और मृत्यु मुझ को संसार भर के आगामी पाप, दुःख और मृत्यु के नाश करने और सारे संसार में मङ्गल के लाने के उतने ही बड़े कारण या साधक दीख पड़ते हैं कि जितने बड़े से बड़े पुण्य और धर्म के कार्य्य, और इस लिए इनकी स्थिति भी धन्यवाद के ही योग्य है और शोचनीय नहीं है।

यदि ऐसा न हो और यदि सबके भक्त बनने का मुझ को पूर्ण निश्चय न हो और दूसरी ओर सारे संसार को अपने वसुधारूपी कुटुम्ब और सब प्राणीमात्र को ईश्वर के बच्चे होने के कारण अपना सगा भाई बहिन, या आयु के विचार से किसी को माता, किसी को पिता, किसी को भाई बहिन, और किसी को बेटा बेटी मानता हूँ तो फिर दुःख कहाँ ? यदि एक प्राणी भी पूर्ण भक्ति से विहीन रह जाय तो इसका विचार भी स्वर्ग को नरक बना देगा। हमको निश्चय है कि शीघ्र ही सब भक्त बनेंगे और किसी न किसी परमोत्तम दशा में प्रत्येक प्राणी और सारा संसार दीख पड़ेगा और यह उत्तमता सदा बढ़ती रहेगी। मोक्ष का होना यदि नाश होना है तो मोक्ष नहीं होगी और यदि नाश होना नहीं है तो सब मोक्ष को अवश्य प्राप्त होंगे और मोक्ष का परमानन्द सदा बढ़ता रहेगा। ईश्वर के पितापन पर विश्वास रख कर मैं तो इस प्रकार के विचार मन में ला कर अपना चित्त तो प्रसन्न करही लेता हूँ लोग मेरे विषय में चाहे जो कहें और मैं समझता हूँ कि यह प्रसन्नता उस दशा को जल्दी लाने और हमारे संकल्पों के पूरे होनेमें बड़ी सहायक होगी जैसा कि मेरी वक्तृता से आगे चल कर सिद्ध और स्पष्ट होगा। अब तक यह दशा क्यों नहीं आई इसका उत्तर न देने के लिए मैं क्षमा माँगा करता हूँ, परन्तु इस प्रकार के विचार का विशेषतः भोले-भाले लोगों में प्रचार करने पर मैं कम से कम थोड़ी देर के लिए हजारों आदमियों और प्लेग से सताये हुए लोगों आदि की दुःखनिवृत्ति और महान् आनन्द की प्राप्ति का कारण हुआ हूँ और इससे मुझे इस प्रकार के विचार प्रगट करने के लिए बड़ी उत्तेजना मिली है। (देखो कहानी बूढ़े आदमी और लक्ष्मी की) इस प्रकार के ईश्वर पर विश्वास रखने से हृदय में यह निश्चय हो जाता है कि हमें इसके द्वारा बड़ी निश्चिन्तता, शान्ति

और आनन्द मिल सकता है और अपनी इस शुभ कानफरेन्स की सफलता और अपने सब मनोरथों की सिद्धि में इससे बड़ी सहा-यता मिल सकती है और विश्वास का फल कैसा होता है इसको समझ लेना कोई कठिन बात नहीं है। जिस प्रकार के ईश्वर पर मेरा विश्वास है वही यदि वास्तविक भी माना जावे तब तो कोई कह ही क्या सकता है परन्तु कल्पित भी हो तो कल्पना करने वाले को किसी प्रकार की कोई भी हानि पहुंचना संभव नहीं है और न उसके आनन्द और उस आनन्द के लाभ और फलों में कोई बाधा पड़ सकती है। इस लाभ से हमारे वे मित्र विहीन रहते हैं कि जो ईश्वर को ही नहीं मानते या जो ईश्वर को एक प्रकार की शक्ति या गुण मात्र ही मानते हैं और जो उसे सगुण या व्यक्ति नहीं मानते। मैं अपने ऐसे मित्रों से बड़े विनयपूर्व्वक निवेदन करूँगा कि जैसे विशेष कर रोगादि के समय वैद्य लोगों की प्रेरणा से चित्त को प्रसन्न करने वाली कल्पित कहानियों आदि का पढ़ना और सुनना भी उचित समझा जाया करता है, क्योंकि उससे स्वास्थ्यादि को लाभ पहुँचता है, वैसे ही वे ईश्वर को मानने और उसको व्यक्तिविशेष या Personal God समझने की ओर अपने चित्त को लगावें या यह सोचें कि कोई आस्तिक, व्यक्ति, जो मानो उनका इस काम के लिए नौकर है, आनन्द ले रहा है और उसके अन्दर से सुन्दर प्रभाव निकल कर उनके अन्दर आ रहे हैं या यही समझें कि शुभ इच्छा मन में आते ही वे कारण कार्य्य के नियमानुसार अत्युत्तम बनते हुए सारे संसार को सुन्दर बना रहे हैं, क्योंकि इससे महान् और अत्यन्त आनन्द और उस आनन्द से महान् लाभ होने की संभावना है। पश्चिम देश के किसी महापुरुष ने क्या ही अच्छा कहा है कि "If there is no God, we better create one" अर्थात् "यदि ईश्वर नहीं है तो उत्तम होगा कि हम

उसकी कल्पना कर लें।" कम से कम थोड़ी देर के लिए हम सब इस बात को मान लें, कि एक ईश्वर है, कि जिसके अन्दर अवगुण एक भी नहीं है और गुण अनन्त हैं। अपने प्रत्येक गुण में वह अनन्त है। किसी के पापों आदि के कारण वह उससे द्वेष भी नहीं रखता है और उसके गुणों में एक प्रेम का गुण है; और इसमें भी वह अनन्त है। इतना मान कर हमें देखना चाहिये कि इसका क्या फल होता है। और पिता माता आदि का प्रेम उसी प्रेम के सूर्य्य की मानो एक किरण है। या यों कहिये कि वह हमारा अत्यन्त ही ऊँची श्रेणी का प्रेमी माता या पिता है। माता-पिता के संबंध में एक छोटी सी प्रश्नोत्तरी कैसी सुन्दर किसी ने बनाई है कि जो मुझको श्रीमान् गोस्वामी मधुसूदनलाल जी ने बताई थी। वह यह है:—

प्रश्न—मिष्टं किं।

उत्तर—सुतवचनं।

प्रश्न—मिष्टतरं किं।

उत्तर—तदेव सुतवचनं।

प्रश्न—पुनरपि मिष्टतरं किं।

उत्तर—युक्त्याप्रौढं सुतवचनं।

इसका अर्थ यह है कि संसार में मीठा या आनन्द का देने वाला पदार्थ क्या है? इसका उत्तर दिया जाता है कि बेटे या बेटी का वचन। फिर पूछा जाता है कि उससे अधिक मीठा या आनन्द का देने वाला पदार्थ क्या है? इसका उत्तर दिया जाता है कि वही बेटे या बेटी का वचन। फिर पूछा जाता है कि फिर बताओ कि उससे भी अधिक मीठा और आनन्द का देने वाला पदार्थ क्या है? इसका भी यही उत्तर दिया जाता है कि बेटे या बेटी का युक्तियों से प्रौढ़ किया हुआ वचन ही सबसे अधिक मीठा या आनन्द का देने वाला

पदार्थ हैं। यदि इस प्रेम के सूर्य की एक किरण से माता-पिता के लिए बच्चों के शब्द ऐसे समझे जाते हैं कि उन से अधिक आनन्ददायक और कोई पदार्थ होही नहीं सकता है तो जिस पिता का प्रेम अनन्त है, उस के लिए उसके बच्चों के शब्द कितने आनन्ददायक होंगे, इसका अनुमान कौन कर सकता है? यहां एक और बात विचार करने के योग्य है। वह यह है कि सुपुत्र और सुपुत्री के शब्द तो माता-पिता सदा ही सुनते हैं और उनका आनन्द लेते हैं; परन्तु कहीं कुपुत्र या कुपुत्री यदि कुछ प्रेम के वचन माता-पिता के कानों में डाल देवें तो फिर देखो उन के आनन्द की दशा को। पुत्र या पुत्री शब्द का अर्थ नरक से त्राण करने वाला है, परन्तु उस प्रश्नोत्तरी को सोच कर इस बात पर विचार करें तो वास्तव में बेटा या बेटी नरक से त्राण करनेवाले नहीं किन्तु स्वर्ग से भी महा स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाले हैं। इस लिए बेटों और बेटियों को पुत्र और पुत्री कहना ही बस नहीं है। उनको नन्दन और नन्दिनी अर्थात् आनन्दवर्द्धक शब्द से पुकारना उचित है। (देखो कहानी दो अंधों की अशरफ़ी खो जाना) इसी लिए मैंने आरम्भ में आपके लिए इस शब्द का प्रयोग किया है। प्यारे भाइयो और प्यारी बहिनो, बधाइयाँ तुमको और बधाइयां मुझको कि हम अपने शब्द मात्र से ईश्वर के पुत्र और पुत्री और नन्दन और नन्दिनी बन जाते हैं। यहाँ ईश्वर के आनन्द रूप होने और हमोर उसके नन्दन होने के विषय में जो एक शंका हुआ करती है, उसका समाधान मुझको अपने विचार के अनुसार करना उचित प्रतीत होता है। हमारे तत्वदर्शी भाई ईश्वर को आनन्द रूप मानते हुए हमारे विचारों की हँसी उड़ाया करते हैं और कहा करते हैं कि यदि ईश्वर हमारे "पिताजी सब आपके भक्त बन जावें" आदि शब्द कहने से प्रसन्न होता है तो इससे सिद्ध होता है कि उससे पहले वह प्रसन्न नहीं था या उसके आनन्द में कुछ न्यूनता थी। मित्र-

गया, एक समय था कि जब मैं भी इसी प्रकार के विचार अपने मन में रखता था और इसके विपरीत विचार वालों को बड़ी छोटी दृष्टि से देखा करता था और इस विचार के अन्दर जो एक सूखापन है उसका शिकार मैं भी था; परन्तु उसी परम पिताने कृपा करके एक दूसरी रोशनी मेरे अन्दर चमकाई—और मेरे अन्दर बड़े आनन्ददायक विचार उत्पन्न कर दिये। उन विचारों को मैं स्वामी रामतीर्थ जी महाराज का दृष्टान्त दे कर सुगमता से प्रकट कर सकूंगा। स्वामीजी सदा आनन्दित रहते थे और उनको आनन्दमूर्ति या आनन्दरूप कहना कोई अत्युक्ति नहीं समझी जानी चाहिये। मैंने देखा है कि उनके पास एक मण्डली बैठी हुई है और वे मग्न हुए परमानन्द में मग्न और आनन्द रूप बने हुए अपने अत्यानन्ददायक विचार उनके आगे प्रकट कर रहे हैं। इस दशा को देख कर आपभी कह देते कि स्वामी जी आनन्दरूप हैं। परन्तु उधर से एक और मनुष्य आ जाता है और उसके आने पर जो स्वामी जी की दशा होती है उसको देख कर जो दो तीन मिनट तक हँसते हुए एक
"अहा हा हा हा हा हा हा ... ..."
की ध्वनि उनके मुख से निकलती है उसको आप देखते तो आप निस्संदेह कह देते कि आनन्दरूप स्वामी जीके आनन्द में एक बहुत बड़ी और भारी वृद्धि हुई है और यदि कोई आनन्दरूप माता या पिता अपने बच्चों को देख कर उनकी वाणी को सुन कर गोस्वामी मधुसूदनजी वाली उस प्रश्नोत्तरी के अनुसार अधिक आनन्दित नहीं होते हैं तो वे माता-पिता ही क्या हुए? और ईश्वर जैसे पिता या माता में तो इस प्रकार की शंका कैसे हो सकती है? हम जानते हैं कि इस मत में हमारे साथ बड़े बड़े विद्वान् सहमत हैं और यह मत तर्क से भी सिद्ध होने योग्य है परन्तु कोई हमको चाहे कितना ही बड़ा मूर्ख क्यों न कहे हम तो ऐसे ही ईश्वर को मानेंगे कि जो इस श्लोकः—

"आत्मा त्वं गिरजामति सहचरा प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
संचाराः पदयोः प्रदक्षिणाविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥"

के भावों के अनुसार अपने बच्चों को सोते, खाते, पीते, हंसते, खेलते, कूदते, पढ़ते, लिखते, अपना कार व्यवहार करते और विशेषतः श्रद्धा के साथ पुत्रों को अपने चरणों में आया हुआ देख कर उनकी वाणी को सुन कर, उनके हृदयों में शुभ भावों और शुभ इच्छाओं की स्थिति को देख कर (और उससे भी अधिक) उस वाणी को और उन भावों को और उन सब इच्छाओं को पिताजी की प्रसन्नता के निमित्त कहते या मनमें लाते जान कर और (और भी अधिक) जो अपने बच्चों के अन्दर अपना विश्वास देख कर उनको सन्ध्या (छोटी या बड़ी) अग्निहोत्र, पितृतर्पण इत्यादि करते देख कर प्रफुल्लित हो जावे हम ऐसे ही ईश्वर को मानना चाहते हैं और मानते हैं और मानेंगे और शास्त्रों में जो यह वचन है कि "मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः" अर्थात "मनही आदमियों के दुःखों में बंधने का और मोक्ष (दुःखों से छूटने और परमानन्द प्राप्त करने का कारण है" उसके अनुसार मनसे उक्त प्रकार के ईश्वर को मान कर जो स्वर्ग से भी ऊँचे आनन्द और महान् लाभ की प्राप्ति हो सकती है उसको प्राप्त करेंगे और करते हैं और हम नहीं कहना चाहते हैं कि हम जैसे मूर्खों के समान आनन्द और लाभ उठाने से तत्त्वदर्शियों और विद्वानों को वंचित रहना मुबारिक हो, परन्तु हमारी हार्दिक इच्छा है कि जो अवश्यमेव पूरी होगी (इसका हम को निश्चय न हो तो हमारे आनन्द में विघ्न पड़ जावे) कि ऐसे

विचार मन में न रखने के कारण अर्थात् मन को मोक्ष के बदले बंधन का कारण बनाने के कारण जो हमारे प्यारे भाई एक प्रकार का नरक भोग रहे हैं वह भी शीघ्र ही हमसे भी अधिक आनन्द और लाभ को प्राप्त करेंगे। यदि मान लिया जाय कि हम ग़लती पर हैं तब भी हम नफे में हैं और वे गलती पर न होने पर भी बहुत बड़े लाभ से वंचित हैं और इस को विचारा जावे तो शायद आप उन्हीं को मूर्ख और हमको बुद्धिमान् कहेंगें। सच्ची बुद्धि वह है जिससे अब तो आनन्द और आगे को लाभ और आनन्द दोनों प्राप्त होवें और यह ईश्वर को पूर्वोक्त प्रकार का आनन्द-रूप मानने से प्राप्त होती है। शायद इसी बुद्धि का वर्णन इस श्रुति में है:—

"याम्मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु,,

अर्थः—"हे अग्ने (परमपिता परमात्मन्) मुझको आजही (या अब ही इसी दम) उस बुद्धि द्वारा बुद्धिवाला बनाओ कि जिस बुद्धि की देवतागण और पितर (महापुरुष) उपासना करते हैं" उस बुद्धि की या उसके फलों की प्राप्ति की दशा में प्रत्येक मनुष्य (जैसा कि आगे और भी स्पष्ट प्रकार से सिद्ध किया जावेगा) चाहे वह कैसा ही पापी, ग़रीब, दरिद्री, किसी देश, या किसी धर्म का हो, ईश्वर का स्मरण करते ही शुभ भाव मन में लाते ही तत्काल, हाँ तत्काल नहीं तो 'अद्य' शब्द इस मन्त्र में व्यर्थ ही सिद्ध हो जावेगा अपने आप को पा सकता है-मानो जो इच्छा इस मंत्र में प्रकट की जाती है उसकी पूर्त्ति तुरन्त ही हो जाती है, और सर्वदा अधिक से अधिक होती रहेगी। कैसी सुन्दर, कैसी लाभदायक बुद्धि को माँगने नहीं किन्तु ले लेने की शिक्षा हमारे मंगलरूप पिता हमको वेदों आदि के अनेक वचनों द्वारा देते हैं, वाह वा, धन्य हो प्यारे पिता तुम धन्य हो ! क्या इससे अधिक

कोई लाभ या आनन्द हो सकता है कि आप ईश्वर की प्राप्ति ही नहीं कर लेते हैं किन्तु अपने आपको ईश्वर के साथ बात करते और गोस्वामीजी वाली प्रश्नोत्तरी के अनुसार उसकी महान् प्रसन्नता और आशीर्वाद के पात्र बनें और उस आशीर्वाद के गुणों से अपने आपको भरपूर आदि आदि पावें और आगे को भी उस आनन्द के लाभों में वृद्धि प्राप्त करते रहने का निश्चय आप को होजावे ? हमने माना कि सांसारिक पदार्थों के प्राप्त करने की और दुनिया में नये नये आविष्कार करने आदि की बुद्धि तुरन्त ही हम को प्राप्त नहीं हो जाती है। बुद्धि तो हर प्रकार की प्रथम तो पिछले कर्मों के कारण प्राप्त होती है, दूसरे उस आनन्द के कारण केवल बुद्धि ही नहीं किन्तु सब प्रकार के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक गुण मनुष्य के अन्दर बढ़ते रहते हैं परन्तु इस की आपको परवाह क्या है ? जो मनोरथ उस आविष्कार करने आदि की बुद्धि से आप सिद्ध करना चाहते हैं, वास्तव में यदि विचारा जावे तो वह मनोरथ कितने दरजे, ओह ! कितने बड़े दरजे, जैसा कि आगे अधिक स्पष्टता के साथ सिद्ध किया जवेगा मनुष्य ईश्वर के सन्मुख होते ही प्राप्त कर लेता है और उससे अधिक और भी बहुत बहुत कुछ प्राप्ति उसको होती है कि जिसको हम समझ भी नहीं सकते। किसी को कल्पवृक्ष मिल जावे तो उसका लाभ बहुत थोड़ा होगा क्योंकि वह कल्पवृक्ष से वही पदार्थ मांग सकता है कि जो उसकी बुद्धि में आसकते हैं। और मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार जो कुछ माँग सकता है वह न तो प्राय: इतना मंगल-दायक होना संभव है और न वह किसी गणना के योग्य हो सकता है। परन्तु ईश्वर से बात करने वालों के लाभ आदि का अनुमान कौन कर सकता है ? अष्टसिद्धि और नवनिद्धि और करामात करने की शक्तियाँ उसके लाभ के आगे तुच्छ हैं। सिद्धि-वाले जो काम अपनी

सिद्धियों द्वारा कर सकते हैं उनसे लाखों करोड़ों गुना काम हमारे सोते समय भी हमारा एक एक रोम करता रहता है। सिद्धों को यदि दिव्य चक्षु और दिव्य श्रोत्रादि प्राप्त हो जाते हैं तो हमको उसकी कृपा से विश्वास और विचार के चक्षु और श्रोत्र प्राप्त हैं जिनसे हम मन के घोड़े पर सवार हो कर यह देखते और सुनते हैं कि सिद्ध लोग और विश्वासहीन सिद्ध और योगी लोग भी क्या करेंगे (देखो कहानी फ़कीर की जो बादशाह के जलूस के आगे बैठ गया था) जो योगद्वारा अभी तक उसके पाने की कोशिश में ही हैं। जबकि हम सदा उसके साथ बातें करते हैं तो हमको वे दया के ही पात्र जान पड़ते हैं और इसकी पुष्टि इस श्लोक से भी होती है :—

"नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये न वै।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।"

अर्थात् भगवान कहते हैं कि "हे नारद मैं न तो वैकुंठ में और न योगियों के हृदयों में निवास करता हूँ किन्तु मेरे भक्त (विश्वासी बेटे) जहाँ मेरा गान करते हैं (और बच्चों का एक एक शब्द बड़ा मिष्ट और गान से बढ़ कर होता है) मैं तो वहीं रह कर परमानन्दित होता हूँ।"

यहाँ यह भी उचित प्रतीत होता है कि साथ ही साथ एक और शंका जो भिन्न भिन्न पश्चिमीय विद्वानों के लेखों के पढ़ने आदि से उत्पन्न हो जाया करती है उसका भी समाधान मैं अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार करूँ। कितने ही विद्वान् ईश्वर को प्रत्येक प्रकार से अनन्त समझ कर उसको un-knowable अर्थात् न जाना जाने योग्य कह कर यह कहा करते हैं कि "हम उसके विषय में कुछ भी नहीं जान सकते हैं और कोई बात किसी प्रकार की अच्छी बुरी उसके सम्बन्ध या उसके गुण-अवगुण आदि के विषय में कुछ कह ही नहीं सकते हैं"। मेरा

विचार इस विषय में यह है कि यह तो ठीक है कि ईश्वर अनन्त है और उसके गुण अनन्त हैं और होना भी यही चाहिये। बिना ऐसे ईश्वर के संसार का काम चलना और बिना ऐसा पिता हुए हमारा कल्याण और मंगल होना असम्भव है परन्तु यदि किसी लड़के से कोई उसकी माता के विषय में पूछे तो वह कह देगा कि मैं उसको भली भाँति जानता हूँ परन्तु यदि उससे पूछा जावे कि उसकी माता के सिर में कितने बाल हैं या उसकी माता के पड़दादा के पड़दादा के पड़दादा का नाम, उसकी उम्र और उसके नाना के साले का नाम और उम्र क्या थी और इसी प्रकार के और प्रश्न उस लड़के से किये जावें और उनके उत्तर वह न दे सके तो उससे यह नहीं सिद्ध होगा कि वह अपनी माता के प्रेम को और उसके विषय में कुछ भी नहीं जानता। या यदि मैं यह न बतला सकूं कि मैंने आज कितने दाने चावल के खाये हैं, तो क्या मैं चावल खाने के स्वाद को और उसके विषय में कुछ भी नहीं जानता ? हम अनन्त ईश्वर को पूर्णतया नहीं जान सकते हैं परन्तु हम इतना जानना काफी समझते हैं कि जैसा कि अपराध-क्षमापन स्तोत्र के पहिले श्लोक में भाव है।

न मंत्रं नो यन्त्रं तदपि न च जाने स्तुतिमहो।
न चाह्वानं ध्यानं तदपि न च जाने स्तुतिकथाः ॥
न जाने मुद्रास्ते तदपि न च जाने विलपनं।
परं जाने मातस्त्वदनुशरणं क्लेशहरणम् ॥

अर्थ। "माता जी ! मैं न मंत्र जानता हूँ न यंत्र और न बड़ी स्तुति करना जानता हूँ, न आह्वान करना जानता हूँ, न स्तुति-कथा जानता हूँ, न मुद्रा (या योग) जानता हूँ, न विलाप करना जानता हूँ परन्तु यह जानता हूँ कि आपकी शरण (सारे) क्लेशों के हरने वाली

(और सारे सुखों के देने वाली) है" हमारे लिए इस श्लोक के भावानुसार यह जानना काफ़ी है कि वह महान् अनन्त परमात्मा हमारा पिता और माता है। और हम जब चाहें उसकी शरण में या गोद में जा सकते हैं और उसकी शरण में या गोद में जाना सारे क्लेशों का हरा जाना और सम्पूर्ण सुखों का प्राप्त कर लेना है और परमोत्तम दशा को प्राप्त कर लेना और औरों को करा देना है और मैं फिर कहता हूँ कि चाहे ये बेचारे दया के पात्र इस परम आनन्द और महान् लाभ से वंचित विद्वान हमको मूर्ख कहें परन्तु हमतो इन विद्वानों के Un-knowable न जाना जाने योग्य ईश्वर को उपर्युक्त प्रकार से Knowable जाना जाने योग्य ही मान कर आनन्द-लाभ करेंगे। (देखो कहानी फ़िलासफर और मल्लाह की) मैं कह रहा था कि इस महान् लाभ की दशा में प्रत्येक मनुष्य अपने आपको तत्काल पा सकता है। आप के चरणों की कृपा से मैं अपने आप को ऐसी दशा में पाता हूँ और जब तक कि ईश्वर का नाम वेदों और शास्त्रों आदि में माता और पिता कहा जाता है, तब तक तो शायद हमारे पक्ष के ठीक होने में आपको भी कोई सन्देह नहीं होगा। हम ईश्वर को आनन्दरूप और आनन्द में परिपूर्ण मानते हैं परन्तु जब कि वे माता-पिता भाग्य हीन समझे जाते हैं कि जिनका आनन्द बच्चों को देख कर और विशेषतः उनको खाते, पीते और उनके भोले-भाले प्रेम और विश्वास आदि और शुभ भाव और प्रेमपूर्ण शब्द सुन कर वृद्धि न पावे, वैसे ही हम ईश्वर के विषय में भी समझते हैं। और यदि ईश्वर ऐसा न हो तो उसके होने से या उसके आनन्दरूप होने से हमको क्या लाभ है ? और उसके न होने से या उसके आनन्दरूप न होने से हमारी क्या हानि है। ? ऐसे ईश्वर में और पत्थर या किसी जड़ पदार्थ में कुछ भी भेद नहीं है।

अच्छा अब आगे चलने से पहले आइये हम देर न करें उस प्यारे पिता के कानों में अपना शब्दरूपी अमृत डाल दें। वह इस समय यहाँ अपने संपूर्ण प्रेम और समस्त गुणों और महान् ऐश्वर्य्य के साथ विराजमान है। उस पूर्वोक्त प्रश्नोत्तरी के अनुसार ईश्वर मानो हमारे बोल बोल का भूखा है। आइये उस बेचारे की भूख मिटादें। अच्छा होकि हम सब उसके आगे हाथ जोड़ें परन्तु यह याद रहे कि कोई मनुष्य किसी दास या सेवक या प्रजा आदि के आगे हाथ जोड़ने से प्रसन्न नहीं होता है। किन्तु उसका पुत्र प्रेम और पुत्र-भाव के साथ हाथ जोड़ता है, तब उसको प्रसन्नता होती है। इसलिए हम अपने आपको दास या सेवक आदि न समझें किन्तु उसको प्रसन्न करने के लिए पुत्र-भाव को मन में ला कर हाथ जोड़ें, साथ ही उसके यह भी स्मरण रहे कि हम जो शब्द उसके कानों में डालें या उच्चारण करें तो केवल इसी भाव से कि हमारे शब्दों से वह प्रसन्न होता है। इसी निष्काम भाव से जब कोई नन्दन या नन्दिनी केवल पिता के प्रसन्नतार्थ उससे बात करता है तब उस पिता को पूर्ण प्रसन्नता होती है। आइये हम अपने प्यारे पिता को पूरी प्रसन्नता का मजा चखावें, अच्छा लो अब जोड़िये हाथ और तीन बार कहिये "पिताजी सब आपके भक्त बन जावें" मैं इस समय अपने मन में यह मान लेता हूँ कि आप सबने ये शब्द उच्चारण किये हैं। अब जरा हम याद करें कि हमने उक्त प्रकार का ईश्वर मान रक्खा है, और यदि ऐसा हम उसको मानते हैं तो विचार के संसार में हम अपने आपको एक बहुत ही बड़ी आश्चर्यमय दशा में इस समय पावेंगे कि जिससे अधिक आनन्ददायक और लाभदायक और ऊँची दशा का ख्याल करना भी शायद असंभव हो। लोग बहुत प्रसन्न हुआ करते हैं यदि लाट साहिब या लाट से भी बड़ी पदवी वालों से उनकी बात-चीत हो जावे। परन्तु इस समय हमने एक बहुत

बड़े लाटों के लाट और सम्राटों के सम्राट् के साथ बातें की हैं और हमको अधिकार प्राप्त है कि हम जब चाहें तब यहाँ तक कि अपने बिस्तर पर पड़े पड़े भी उससे बातें कर लें। ओह! मनुष्य जाति तेरा सौभाग्य! ओह! परमात्मन् तेरे सुन्दर नियम! बधाइयाँ प्यारे भाइयो, और प्यारी बहिनो तुम को और बधाइयाँ मुझ को!

अब हम थोड़ा इस बात को विचारें कि जैसा कि गोस्वामी जी वाली प्रश्नोत्तरी से प्रगट है कि कौनसा पिता है कि जो बच्चों के शब्दों को सुन कर और फिर वचन भी वे कि जो हमने अभी कहे हैं, और बच्चों के हृदयों में एक सुन्दर भाव का होना जान कर अत्यन्त आनन्द को प्राप्त न हो! और जो अनन्त प्रेमी पिता है वह तो जितना कुछ प्रसन्न हमारे इन शब्दों से हुआ है और जितना कुछ प्रसन्न हम उसको ऐसी सुगमता से कर सकते हैं उसका अनुमान कौन कर सकता है? प्यारे भाइयो! क्या इस प्रकार ईश्वर को प्रसन्न कर लेना कोई छोटी बात है? लोगों ने राजपाट, धन, दौलत, अपने पराये और सब प्रकार के सुखों को छोड़ छाड़ कर जंगलों में रह कर केवल इसी लिए कैसे कैसे कष्ट उठाये हैं कि ईश्वर की प्रसन्नता को प्राप्त कर सकें। इससे स्पष्ट है कि राज्य आदि की अपेक्षा ईश्वर की प्रसन्नता अधिक मानने योग्य है। और हमको इस समय राज्य आदि से अधिक पदार्थ की प्राप्ति हुई है और सदैव बड़ी सुगमता से होती रह सकती है। ओह! मनुष्य जाति, तेरा सौभाग्य! ओह! परमात्मन् तेरे सुन्दर नियम! बधाइयाँ प्यारे भाइयो ~~और बधाइयाँ~~ प्यारी बहनो तुमको, और बधाइयाँ मुझको!

साथ ही हम इस पर भी ध्यान दें जब कि वह ऐसा प्रेमी पिता है और हमसे वह प्रसन्न भी इतना है तो क्या वह हमारी इच्छा को और विशेषत: इस प्रकार की इच्छा को भी पूर्ण

नहीं करेगा कि जैसी उन शब्दों से प्रकट होती है जो आपने अभी उच्चारण किये हैं अर्थात् "पिताजी सब आपके भक्त बन जावें?" जितनी उसकी शक्तियाँ हैं अवश्यमेव और निश्चय हमारी इस इच्छा को पूर्ण करने में योग देंगी। उसकी शक्तियाँ अनन्त हैं इस लिये हमको अपनी इच्छाओं की पूर्ति में कोई संदेह नहीं हो सकता और हम मानो सारे संसार को भक्त बनाने वाले बन गये हैं। क्या यह कोई छोटे पुण्य की बात है? प्रिय मित्रगण, आज तक जो कुछ भी हमने पाप किये हैं और उनका फल हमको जो कुछ भी भोगना पड़ें, परन्तु इतना बड़ा पुण्य भी तो, कि जो अनेक राज्यों के दान से कहीं बढ़कर है, अपने फल पैदा करेगा। बड़े बड़े दानी लोग अपने गुमाश्तों या खज़ानचियों को केवल हुक्म दे देते हैं तो बड़े बड़े पुण्य के काम उनके हुक्म या जबान हिलाने मात्र से हो जाते हैं। ओह! हमारी जबान हिलाने से कितना बड़ा पुण्य का काम हो जाता है और इस पुण्य का सुख जो हमें आगे मिलेगा उसका अनुमान कौन कर सकता है? सुख का ध्यान हमको करना नहीं चाहिये; हमको केवल इस बात से प्रसन्न रहना चाहिये कि हम अपने प्यारे पिता की ऐसी प्रसन्नता के और अपने संसार-रूपी परिवार की ऐसी बड़ी सेवा के कारण बन रहे हैं। और कितनी सुगमता से हम इस बात को प्राप्त कर सकते हैं। कितनी सुगमता से एक रंक और महापापी भी कितना बड़ा दानी बन सकता है। ओह! मनुष्य जाति तेरा परम सौभाग्य! ओह! परमात्मन् तेरे सुन्दर नियम! बधाइयाँ प्यारे भाइयो! और प्यारी बहनो तुमको, और बधाइयाँ मुझको!

इधर एक और बात विचारिए। जिस समय किसी के मन में किसी अपवित्र स्त्री या पुरुष के नाम का चिन्तन या स्मरण होता है उसी समय वह अपवित्र हो जाता है; बाहर से चाहे वह बदला हुआ

नहीं दीख पड़ता, परन्तु असल में वह बदल जाता है, यह निश्चय है। इसको विचार कर यह सहज ही समझ में आ जाता है कि यदि एक अपवित्र पुरुष या स्त्री के नाम का चिन्तन या स्मरण मात्र हमको तत्काल अपवित्र बना देता है, तो परम पावन और पवित्रता के भाण्डार परमात्मा के नाम का चिन्तन या स्मरण चाहे वह परमात्मा कल्पित ही क्यों न हो हमको तत्काल पवित्र बना देता है। कम से कम इस समय हम ने किसी खोटे मनुष्य का स्मरण नहीं किया है कि जो हम अपवित्र हो जाते। हमने ईश्वर का स्मरण किया है और हम पवित्र और परम पवित्र हो गये। बाहर से चाहे हम कैसे ही दीख पड़ते हों; परन्तु वास्तव में हमारे अन्दर बड़ा परिवर्तन हो गया है जैसा कि चुम्बक पत्थरवाला लोहा रंग, रूप, सूरत, तोल, नाप आदि में वैसाही प्रतीत होता है जैसा कि वह चुम्बक पत्थर के लगने से पहले था परन्तु कौन कह सकता है कि वह असल में बदल नहीं गया ? और जिस प्रकार किसी प्लेग वाले मनुष्य में से प्लेग का असर निकल निकल कर दूसरों को, यहाँ तक कि जड़ पदार्थों को भी प्लेग फैलाने वाला बना देता है, चाहे बाह्य दृष्टि से यह प्लेग प्रतीत न होती हो, परन्तु बुद्धि कहती है कि उसका प्रभाव होने लग गया है ; ऐसे ही हमारे अंदर से पवित्रता के परमाणु निकल रहे हैं और समस्त चराचर को पवित्र ही नहीं किन्तु पवित्रता के फैलानेवाले बना रहे हैं। चाहे यह पवित्रता दीख नहीं पड़ती; किन्तु प्लेग के परमाणुओं के समान यह अपना काम अवश्य कर रही है। इनके प्रभाव और प्लेग, अपवित्रता और बुराई आदि के प्रभाव में अन्तर यह है कि ईश्वरकी कृपा से प्लेग आदि का प्रभाव थोड़ी ही दूर तक हानिकारक होता है और उसकी चाल बहुत धीमी होती है और आगे जा कर यह प्रभाव शनैः शनैः निर्बल होते होते मानों मर जाता है; परन्तु आत्मिक गुणों वाली

पवित्रता आदि का प्रभाव बिजली से भी अधिक वेग के साथ काम करता है। यह सारे संसार में, आकाश, पाताल, सूर्य्य, चन्द्र, तारा-गण आदि के और समस्त जड़, चैतन्य के प्रत्येक परमाणु के अन्दर क्षणमात्र में सुन्दर परिवर्तन पैदा कर देता है और उनको सुन्दर परि-वर्तन पैदा करने वाले बना देता है। वैज्ञानिक लोग कहते हैं "Time and space are no bars to their action" अर्थात् समय और दूरी से उनके असर में कोई रुकावट नहीं आ सकती। ओह! कैसे फल हैं उस पवित्र नाम के स्मरणमात्र के। हम तत्काल आप पवित्र हो जाते हैं और कारण-कार्य्य के नियमानुसार प्रत्येक परमाणु को पवित्र ही नहीं किन्तु पवित्रता फैलाने वाला बना देते हैं। हम तत्काल वह पारस बन जाते हैं कि जो लोहे को सोना नहीं किन्तु पारस बल्कि पारस बनाने वाला बना देता है:—

पारस में अरु संत में, बड़ो अन्तरो जान।
वह लोहा कंचन करे, यह करे आप समान॥
लोहे को सोना करै वह पारस है कच्चा।
लोहे को पारस करै वह पारस है सच्चा॥

हम मानो लोहे को पारस बनाने की मशीन बनाने वाला बना-देने वाले बन जाते हैं। इस समय हमारा रोम रोम इसी काम को कर रहा है। इस नाम का कितना बड़ा फल है, हृदय साक्षी देता है कि इस अपने नाम के स्मरण के फल को परमात्मा अपने बच्चों के अन्दर देख रहा है और मानो आश्चर्य भरे आनन्द में डूब रहा है। कैसा स्पष्ट हो जाता है इन श्लोकों का मन्तव्य कि जो मैंने मङ्गला-चरण में पढ़े हैं अर्थात्—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥
यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात् ।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥

तुलसीदास ने तो नाम की बड़ाई ~~यहाँ तक~~ की है ~~कि~~ :—

कहाँ लो करूँ मैं नाम बड़ाई । राम न सकैं नाम गुण गाई ॥

~~वास्तव में नाम की जितनी बड़ाई की जाय थोड़ी है—~~

बार एक राम कहे जो कोई । होय तरण-तारण नर सोई ॥

तुलसीकृत रामायण में राम नाम के माहात्म्य का बड़ा ही सुन्दर और मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है, उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है :—

राम भक्त हित नर तनु धारी । सहि संकट किय साधु सुखारी ॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा । भक्त होहिँ मुद-मंगल-वासा ॥
राम एक तापस-तिय तारी । नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥
भंजेउ राम आप भवचापू । भवभय-भंजन नाम प्रतापू ॥
दंडक वन प्रभु कीन्ह सुहावन । जन-मन अमित नाम किय पावन ॥
निश्चर-निकर दलेउ रघुनन्दन । नाम सकल कलि-कलुष-निकन्दन ॥

शबरी गिद्ध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल, वेद-विदित-गुण-गाथ ॥

राम भालु-कपि-कटक बटोरा । सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा ॥
नाम लेत भवसिन्धु सुखाहीँ । करहु विचार सुजन मन माहीँ ॥
सुमिरि पवन-सुत पावन नामू । अपने वश कर राखेउ रामू ॥
अपर अजामिल गज गणिकाऊ । भए मुक्त हरि नाम प्रभाऊ ॥

विस्तार-भय से यहाँ अधिक अंश उद्धृत नहीं किया जाता पर भक्त और भावुक जनों को रामायण में वर्णित इस विषय के अविकल अंश का रसास्वादन कर विशेष आनन्द लाभ करना और अपने जीवन को अधिक पुण्यमय और धन्य बनाना चाहिये।

कैसी सुगमता से मुझ जैसा तुच्छ मनुष्य भी तत्काल अति पवित्र और तरण-तारण और ईश्वर के लिए भी आश्चर्य का पात्र बन जाता है। ओह! मनुष्य जाति तेरा परम सौभाग्य! ओह! परमात्मन् तेरे सुन्दर नियम! बधाइयाँ प्यारे भाइयो और प्यारी बहनो तुमको और बधाइयाँ मुझको!

इस प्रकार जब कोई खोटी इच्छा किसी के मन में आती है तो वह उसी समय तत्काल अपवित्र हो जाता है, तो यह समझ लेना सुगम है कि सुन्दर इच्छा के मन में आते ही तत्काल मनुष्य पवित्र हो जाता है। इस समय जो इच्छा हमने प्रकट की है कि सब ईश्वर के भक्त बन जावें इससे अच्छी और कौन सी इच्छा हो सकती है? यदि बुरी इच्छा से कोई तत्काल अपवित्र बन जाता है तो ऐसी सुन्दर इच्छा से हम निश्चय तत्काल परम-पवित्र और पूर्वोक्त प्रकार से संसार में पवित्रता फैलाने वाले और ईश्वर की दृष्टि में आश्चर्य-जनक प्रेम के योग्य बन जाते हैं। कैसी सुगमता से हम ऐसे महान् फल पैदा करने वाले बन सकते हैं और इस समय बने हुए हैं। ओह! मनुष्य जाति तेरा परम सौभाग्य! ओह! प्यारे परमात्मन् तेरे सुन्दर नियम! बधाइयाँ प्यारे भाइयो और प्यारी बहिनो तुमको और बधाइयाँ मुझको!

एक और बात भी विचारने योग्य है। कम से कम इस समय जब कि हम उसके प्यारे बच्चों ने ईश्वर को इतना प्रसन्न किया है तो क्या सन्देह हो सकता है कि हम उसके सम्पूर्ण आशीर्वाद के पात्र

नहीं बन गये हैं कि जिसके कारण पवित्रता ही नहीं किन्तु अनेकानेक गुण हमारे रोम रोम में प्रतिक्षण भरते चले जाते हैं और उनके प्रभाव से कार्य-कारण के नियमानुसार, हमारे अन्दर से निकल निकल कर सारे संसार को मानो निहाल कर रहे हैं। जैसे एक वृक्ष की जड़ में दिया हुआ खाद तत्काल उसके अन्दर परिवर्त्तन करने लग जाता है चाहे उस खाद का गुण कुछ काल तक बाह्य आँखों से नहीं दीख पड़ता है, ऐसे ही हमारे अन्दर इस आशीर्वाद के गुण और हमारे अन्दर से उनके प्रभाव निकल निकल कर औरों के अन्दर चाहे इस समय दीख न पड़ें, परन्तु वे निःसंदेह अपना काम कर रहे हैं। कैसा सुगम है इतने बड़े गुणों को प्राप्त कर लेना और सारे संसार के लिए मंगलकारी बन जाना और सबको, अपने बुज़ुर्गों, प्यारों, अपनी जाति, राजा, प्रजा, छोटों, बड़ों, अच्छों, बुरों इस लोक और परलोक निवासियों को, सब को ऐसा ही बल्कि इससे भी अधिक मंगलकारी (संख वाली कहानी के अनुसार) बना लेना, और कैसा प्रत्यक्ष और स्पष्ट हो जाता है वह अति सुन्दर उत्तम वचन जो मैंने आदि में पढ़ा है:—

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव
ताराबलं चन्द्रबलं तदेव
विद्याबलं सर्वबलं तदेव
लक्ष्मीपतेर्यं हि युगं स्मरामि ॥

ओह ! मनुष्य जाति तेरा परम सौभाग्य ! ओह प्यारे परमात्मन् तेरे सुन्दर नियम ! बधाइयाँ प्यारे भाइयो और प्यारी बहिनो तुमको ! और बधाइयाँ मुझको ! और सुनिये ऐसे

अति पवित्र और अपने आशीर्वाद के समस्त गुणों से भरपूर और अलंकृत मानो मोहन रूप बने हुए अपने प्यारे बच्चों को अर्थात् हमको इस समय वह परमात्मा देख रहा है और अति प्रसन्न हो रहा है। यदि हम विचार के कानों से काम लें तो हमको मानो हृदय-आकाश से एक आकाशवाणी सुन पड़ेगी जैसी महात्मा मसीह को सुन पड़ी थी। हम में से हर एक को वह प्यारा पिता परम आनंद में भरा हुआ, यह कहता प्रतीत होने लगेगा कि "तू मेरा परम प्यारा पुत्र है, तू मेरी परम प्यारी पुत्री है, जिससे मैं अति प्रसन्न हूँ" या "तू मेरे मन का मोहने वाला है, तू मोहन है"। जिस प्रकार कृष्ण-चरित्र में हम सुनते हैं कि यशोदा माता भगवान से कहा करती थी "प्यारे मोहन! तेरे नाम के स्मरण मात्र से मेरी छातियों में दूध उतर आता है और मैं कृतार्थ हो जाती हूँ" इसी प्रकार वह परम जननी वह जगन्माता हम में से प्रत्येक को इस समय यशोदा जी से भी अधिक प्रेम से भरे हुए शब्द कह रही है, चाहे हमको यह अनुभव हो या न हो और हमको इसका आनंद आवे या न आवे। आनंद का आना या न आना तो कुछ पिछले कर्मों से भी सम्बन्ध रखता है कि जो हमारे मंगल का ही कारण होता है परन्तु आनंद के आने या न आने से हमारे लाभ में कुछ भी अंतर नहीं पड़ता, वास्तव में जैसा कि मैंने अभी सिद्ध किया है परमात्मा के शब्द उक्त प्रकार कहे ही जाते हैं और यह महान् उत्तम दशा कैसी सुगमता से हम प्राप्त कर लेते हैं। ओह! मनुष्य जाति तेरा सौभाग्य! ओह! परमात्मन् तेरे सुन्दर नियम! बधाइयाँ प्यारे भाइयो और प्यारी बहिनो तुमको और बधाइयाँ मुझको!

मैंने जो अभी कहा है उसका तात्पर्य यह है कि विचार करने पर हमको निश्चय करने के लिए अवसर है कि इस समय भी वह पिता अपने बच्चों के अन्दर अपने नाम के स्मरण के और शुभ इच्छाओं

को और अपने आर्शीवाद आदि के समस्त गुणों को महान् आश्चर्य की दृष्टि से देख रहा है, और मोहित हो रहा है, और उसकी परम मधुर, परम प्रेम से भरी हुई वाणी हृदय-आकाश से आ रही है कि " तू मेरा परम गुणवान्, परोपकारी, बड़ा धर्मात्मा परम प्यारा राज कुमार है, तू मेरा नन्दन है, तू मेरा मोहन है " । इस आकाशवाणी के लिए हमारी सभा में एक प्रकार के संकेत के तौर पर एक शब्द नियत कर लिया गया है। वह शब्द है "ओम्भूः"। 'भूः' शब्द के अर्थ और भी हैं परन्तु एक अर्थ जिससे हम ऐसे अवसर पर काम लेना चाहते हैं " प्राणप्यारे" का है । पंडित लोग कहा करते हैं "भूरितिप्राणः" और इसीलिए हम इसका यह अर्थ लगाते हैं । और 'ओम्' का शब्द जो 'भूः' के साथ लगाया जाता है यह भी ठीक है । जिन गुणों के कारण ईश्वर को 'ओम्' कहते हैं वे सारे ही उसके आशीर्वाद से हमारे अन्दर आ जाते हैं । इसलिए हमको भी ओम् कहा जाना चाहिये और खाली "भूः" "भूः" अच्छा भी प्रतीत नहीं होता है और जैसा कि एक कवि ने परमात्मा के विषय में कहा है कि " जो मोहि भजे, भजूं मैं वाको, पल न बिसारूं एक घड़ी रे " या जैसा कि परमात्मा के प्रेम का अनुभव करके किसी भक्त ने कहा है "माला जपूं न हर भजूं मुख से कहूँ न राम । राम सदा मुझको भजें और मैं करता विश्राम " । हम लोग अपनी सन्ध्या के समय एक कार्य्यवाही किया करते हैं जिसका नाम हमने छोटी संध्या रख छोड़ा है । वह यह है कि हम तीन बार कहते हैं " पिताजी सब आप के भक्त वा विश्वासी वा आप को अपना पिता माता ~~वा सेवक~~ वा भक्त समझने वाले और मुझ से अच्छे बन जावें" (कहानी मुंशीराम की बेमारी) (कहानी शंखवाली) और उसके पश्चात् उक्त प्रकार के विचारों को मन में ला कर हम अपने हृदयों में यह समझा करते हैं कि उस महान् महान् ईश्वर ने हमारे अंदर अपने

आशीर्वाद आदि के गुण देख कर हमको एक परमप्रेमी पिता व माता के समान अपने बांयें घुटने पर बैठा लिया और अपना बाँया हाथ पूर्ण प्रेम में भर कर अपने संपूर्ण आशीर्वाद के साथ हमारे सिर पर फेर रहा है। दहिना हाथ हम अपना मानो उसको थोड़ी देर के लिए उधार दे देते हैं और उस हाथ में एक माला पकड़ा देते हैं या उँगलियों से काम निकाल लेते हैं और यह समझते हैं कि वह परमप्रेमी पिता व माता हमारा जप करते हुए "ओंभू: ओंभू: " हमसे और हमारे वसुधारूपी कुटुम्ब के प्रत्येक हमारे प्यारे को कह रहा है। एक या अधिक माला इस प्रकार मानो हम उससे फिरवाते हैं और इसमें बहुत थोड़ा समय लगता है। इस क्रिया के अर्थात् इस छोटी संध्या के फल आदि तो हम अनेक समझते हैं परन्तु उन में से हम इन थोड़े सों का वर्णन प्राय: किया करते हैं:-

(१) हम उस महान् ईश्वर से बात करने वाले बन जाते हैं कि जो कोई छोटी पदवी नहीं है।

(२) किसी अपवित्र कर देने वाले नाम के स्मरण करने की जगह परम पवित्र परमात्मा के नाम का स्मरण करने से हम तत्काल परम पवित्र हो जाते हैं।

(३) किसी अपवित्र करने वाली बुरी इच्छा के मन में लाने की जगह एक अति उत्तम इच्छा को मनमें लाने से हम तत्काल परम पवित्र हो जाते हैं।

(४) कोई खोटा, हमको अपवित्र कर देने वाला शब्द अपने मुख से कहने की जगह एक अति उत्तम शब्द कहने से हम तत्काल परम पवित्र हो जाते हैं।

नोट—(१) यहाँ एक दोहे की ओर ध्यान देने की आवश्यकता प्रतीत होती है कि जिसको लोग प्राय: पढ़ा करते हैं या उसके विषय पर विचार किया करते हैं कि:—

राम राम सब को कहै ठग ठाकुर अरु चोर।
बिना प्रेम रीझे नहीं नागर नन्द किशोर॥

बहुधा लोग यह समझ कर निराश हो जाया करते हैं कि हमारे अन्दर प्रेम तो है ही नहीं हम को राम के स्मरण आदि से कोई फल नहीं होता है और साथ ही यह दोहा भी बहुत पढ़ा जाया करता है:—

तुलसी पिछले पाप तें हरि-चर्चा न सुहाय।
जैसे ज्वर के बेग में भूख बिदा हो जाय॥

कि जिससे उनकी निराशा और भी बढ़ जाती है। ईश्वर के स्मरण या सन्ध्या आदि के लिए उत्साह न हुआ या उसमें आनन्द न आया, तो समझ बैठे कि, पिछले पापों के कारण हमारे मन को ये बातें नहीं सुहाती हैं और हमारे अन्दर प्रेम का अभाव है, इस लिए हमको ईश्वरस्मरण आदि से कुछ लाभ नहीं होसकता है। परन्तु पहिले दोहे में जो प्रेम का शब्द है उसको वे आनंद के स्थान में समझते हैं; किसी क्रिया में आनन्द आ गया तो कह देते हैं कि "बड़ा प्रेम आया" और आनन्द न आया तो वह "प्रेम" का अभाव समझा गया। आनन्द का होना या न होना बहुत कुछ पिछले कर्मों के अधीन है परन्तु आनन्द और वस्तु है और प्रेम और वस्तु है। ईश्वर सम्बन्धी बातों में प्रेम या उन बातों की इच्छा सबको है। कभी कभी यह इच्छा प्रत्यक्ष रूप में दीख पड़ती है परन्तु परोक्ष रूप में तो प्रत्येक मनुष्य के अन्दर निरन्तर रहती ही है (कहानी नाक कटाने वाले नौकर की) और जहाँ इस इच्छा को आपने किंचित् भी जगाया या याद किया या ईश्वर का स्मरण किया या कोई अच्छा वचन अपने मुख से या मनसे ही याद किया जैसा कि "पिता जी सब आप के भक्त बन जावें" तो याद रहे कि प्रत्येक विचार, इच्छा और वचन एक कारण है और कारण कार्य के नियमानुसार अवश्य फल पैदा करता है और

छोटी संध्या के फल अवश्य होते हैं, चाहे आनन्द आवे या न आवे। इसको बड़ी सुन्दरता से निम्न-लिखित वचनों द्वारा तुलसीदास जी ने दर्शाया है :—

तुलसी अपने राम को, रीझ भजो भां खीज।
खेत पड़े पर जामता, उलटा सीधा बीज॥

भाव कुभाव अनख, आलसहू। राम भजत मंगल दिशि दशहू॥

कारण-कार्य के नियम को विचार कर स्पष्ट हो जाता है कि मन न लगते हुए या आनन्द न आते हुए भी संध्या आदि करना ईश्वर के आशीर्वाद का पात्र बनना और पूर्ण फल प्राप्त करना है, बल्कि मैं तो कहता हूँ कि जिनको इन कामोंमें आनन्द आता है वे इतने प्रशंसा योग्य नहीं जितने वे कि, जो आनन्द न आते हुए भी उन कामों को करते हैं; (अफीम खाने वाले लड़के की कहानी।) और आनन्द न आने या मन के न लगने पर, और सब प्रकार के दुःखों पर हमको प्रसन्न होना चाहिये क्योंकि, वह हमारी कोई हानि न करता हुआ और हमारे उद्देश्य को पूर्णतया पूरा करता हुआ हम को पिछले पापों के बोझों से मानो हलका कर देता है और इन बातों पर विश्वास होने से आनन्द भी प्रायः तुरन्त आ ही जावेगा और फिर यह विश्वास भी कारण कार्य के नियमानुसार उत्तम ही फल पैदा करता है।

यहाँ एक प्रश्नोत्तरी द्वारा इस अभिप्राय को प्रकट कर देना शायद कुछ अच्छा होगा। वह प्रश्नोत्तरी यह है—

प्रश्न—सन्ध्या (छोटी या बड़ी नमाज़ और उपासना) क्या है ?

उत्तर—ईश्वरसे बात करना, बादशाहों के बादशाह से बात कहना।

प्रश्न—ईश्वर से बात करना क्या है ?

उत्तर—उस परमपिता, उस अनन्त प्रेममयी माता, उस अपने

प्यारे को अमृत पिलाना कि जो मानो अपने अनन्त प्रेम के कारण तुम्हारे एक एक बोल का भूखा है अर्थात उसको परम प्रसन्न करना।

प्रश्न—ईश्वर को प्रसन्न करना क्या है ?

उत्तर—उसके परिपूर्ण और अनन्त आशीर्वाद के पात्र बन जाना।

प्रश्न—ईश्वर के आशीर्वाद का पात्र बन जाना क्या है ?

उत्तर—उस आशीर्वाद के अनन्त गुणों से भर जाना और उन गुणों के प्रभावों को अपने प्रत्येक रोम रोम द्वारा सारे संसार के समस्त चराचरों के प्रत्येक परमाणुओं को उन गुणों से भर देना और उन परमाणुओं में से प्रत्येक को ऐसे ही प्रभाव फैलाने वाला या लोहे को पारस बनाने की मशीन बनाने वाला बना देना।

प्रश्न—संध्या का कोई और भी प्रभाव बताइये ?

उत्तर—सन्ध्या के ऊपर लिखे फलों के विचारने से महान् आनन्द की प्राप्ति होती है और उस आनन्द से शारीरिक, मानसिक और और आत्मिक गुणों का विकाश और वृद्धि प्रतिक्षण होती जाती है। इन गुणों की प्राप्ति और वृद्धि से धनादि इहलौकिक और प्रेम, शान्ति आदि पारिलौकिक सुखों की सामग्री प्राप्त हो जाती है। धर्म का उत्साह, पाप से घृणा, काम क्रोधादि को जीतने और धर्म के काम करने के लिए आत्मिक बल, जीवन को उच्च बनाने के लिए हृदय में उच्च विचार और उच्च भाव उत्पन्न होते हैं और अपने अन्दर से सुन्दर भावों को निकाल निकाल कर सारे संसार को अति सुन्दर प्रभाव फैलाने वाले अपको बना देते हैं। संध्या के गुण जितने कहें थोड़े हैं।

(५) हमारी यह दशा हो जाती है कि सर्वशक्तिमान् ईश्वर हम से परम प्रसन्न हो जाता है और इसके सामने सारे संसार का राज्य भी कोई चीज नहीं है।

(६) हमारी ऐसी सुन्दर इच्छा को परमात्मा पूरी करने का मानो जिम्मेदार समझा जाता है और सारे संसार के भक्त बन जाने का हम को निश्चय हो जाता है, मानो हम एक जबान हिलाने मात्र से सारे संसार को भक्त बनाने का पुण्य बड़ी सुगमता से ले लेते और महा-दानी बन जाते हैं।

(७) हम उस परम पिता परमेश्वर के सम्पूर्ण और अनन्त आशीर्वाद के पात्र तत्काल बन जाते हैं और उस आशीर्वाद से हमारे अन्दर नाना गुण भर जाते हैं कि जिनसे ईश्वर भी मानों मोहित हो जाता है।

(८) पवित्रता और ईश्वर के आशीर्वाद के गुण जो हमारे अन्दर भर जाते हैं उनके प्रभाव या लहरें हमारे अन्दर से निकल निकल कर सारे संसार के जड़-चैतन्य के एक एक परमाणु में एक ऐसा परिवर्तन पैदा कर देती हैं कि वह परमाणु शंखवाली कहानी के अनुसार हम से भी अधिक उत्तम बन जाते हैं और इन दोहों का मन्तव्य प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगता है:—

पारस में अरु सन्त में बड़ो अन्तरो जान।
वह लोहा कंचन करै वह करै आप समान॥
लोहे को सोना करै वह पारस है कच्चा।
लोहे को पारस करै वह पारस है सच्चा॥

और सारा संसार मानो लोहे को पारस बनाने वाली मशीन बन जाता है।

(९) कारण-कार्य के नियमानुसार यह परिवर्तन प्रत्येक परमाणु को सारे संसार में सुन्दर परिवर्त्तन लाने का कारण बना देते हैं। इस स्थान में मैं अपना यह निश्चय प्रकट करने की आज्ञा चाहता हूँ कि इससे यह सिद्ध होता है कि आप महाशयों के चरणों तक में वे गुण भरे हुए हैं कि जिनकी रज के एक एक परमाणु में से जो

प्रभाव निकलते हैं, यदि कोई और कारण न भी हो, तो भी केवल उन्हीं से मेरे अन्दर एक ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि मैं वास्तव में और ईश्वर की दृष्टि में आश्चर्य-जनक मोहनरूप और उसके "ओंभू: ! ओंभू: !" के जाप का पात्र बन जाता हूँ और मेरे हृदय की बात यदि आप पूछें तो मैं कहूँगा कि मैं आप को कारण बताये बिना किसी प्रकार भी अपने अन्दर उच्च भाव का आना बल्कि ईश्वर की प्राप्ति तक नहीँ चाहता। मैंने यही बात कुंभ के अवसर पर प्रयागराज से अपने प्यारे भ्राताओं को लिखी थी और आप भी मेरी दृष्टि में आयु के विचार से कोई माता-पिता, कोई भ्राता-भगिनी और कोई पुत्र-पुत्री हैं और वही बात मैं आपसे कहता हूँ। मुझको इसमें ही आनन्द आता है और मुझको यह भी प्रतीत होता है कि अपने बच्चों की ओर मेरा इस प्रकार का भाव देख कर परमात्मा भी मुझसे अति-प्रसन्न होते हैं। आपके चरणरज में से कुछ भाव या लहरें अवश्य निकलती ही हैं और उक्त विचारों से हमको सिद्ध हो गया है कि वे लहरें सारे संसार के अन्दर और मेरे अन्दर भी बड़ी ही अनूठी सुन्दरता और दिव्य भाव लाने वाली हैं। और इसको विचार कर मेरा इस कानफरेन्स के सभापति के पद पर उपस्थित दिखाई देना कौन आश्चर्य है ? और जिनके चरण-कमल की रज ऐसी है उनके गुणों को कौन वर्णन कर सकता है ! ! ! ख़ूबी को उनकी कोई अहले नज़र से पूछे। हाँ मेरे दिल से पूछे, मेरे जिगर से पूछे, इस रज के कारण मैं ऐसा बन गया हूँ कि मेरे गुण वर्णन होने सर्वथा असंभव हैं। यदि मैं ऐसा न मानूँ तो मैं आपका और ईश्वर के नाम के माहात्म्य आदि का बड़ा अनादर करने के महापाप का भागी बन जाता हूँ, मैं नास्तिक बन जाता हूँ ।

नोट—इस पर विचार करने से स्पष्ट हो जायगा, कि मेरा अपनी प्रशंसा करना, केवल आपके चरणरज की महिमा को वर्णन करना है और मेरी अपनी प्रशंसा न करना मानों आप की निन्दा करना है। इसप्रकार मेरा परम अहंकार और अभिमान, मेरी परम नम्रता का प्रकाशक है—और जब कोई मेरी प्रशंसा करता है तो वह मानो आपके और अपने चरणरज के माहात्म्य का वर्णन करता है और उस पर मुझ को तीन या सात या नौ लकीरों वाली कहानी याद आ जाती है।

(१०) इस अति उत्तम दशा में हमको देख कर जो उक्त प्रकार ईश्वर हमको हमारा " ओ३म् भूः ओ३म् भूः " का जाप करता हुआ प्रतीत होता है उससे जो आनन्द हमको आ सकता है या आता है वह संसार के सारे पदार्थों को पा कर भी किसी को नहीं आ सकता।

(११) यह आनन्द या आत्मिक भोजन, हमारे खून के बढ़ने, वीर्य्य के पुष्ट होने, प्रेम, भक्ति, श्रद्धा, शान्ति, बुद्धि, विचार, शक्ति, तेज, बल, पराक्रम, पुरुषत्व, पुरुषार्थ, साहस, विश्वास, नम्रता, सेवा, धर्म, सहनशीलता, सन्तोष, दया, वीरता, दृढ़ता, क्षमा, कोमलता, गंभीरता और प्रबन्ध की शक्ति आदि अनेकानेक शारीरिक मानसिक, और आत्मिक गुणों को हमारे अन्दर आने का कारण बनता है और बड़ा सुन्दर परिवर्तन उत्पन्न करने और उक्त विचार के अनुसार और कारण-कार्य्य के नियमानुसार सारे संसार में सुन्दरता फैलाने और अपने लिए और अपने सब प्यारों के लिए सारे संसार को मङ्गलमय बनाने और ईश्वर को और भी अधिक प्रसन्न करने का कारण होता है।

(१२) इसके विपरीत दुःख, शोचादि से हमारे अन्दर निर्बलता आती है; बल, बुद्धि, तेज, पुरुषार्थादि सारे शारीरिक, मानसिक और आत्मिक गुणों का नाश होता है। आत्मिक बल न होने से हम काम, क्रोधादि को जीत नहीं सकते, हम नीचे ही को गिरते जाते हैं और दूसरों के लिए भी हमारे अन्दर से हानिकारक परमाणु उत्पन्न हो कर निकलते हैं। शोक बड़ी बुरी चीज है:—

श्लोक

"शोको नाशयते धैर्य्यं शोको नाशयते श्रुतं
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः ॥१॥
चिताचिन्ताद्वयोर्मध्ये चिन्ता तत्र गरीयसी।
चिता दहति निर्जीवम्, चिन्ता चापि सजीवकम्॥२॥

इतनी ही बात अच्छी है कि, शोक आदि के असर थोड़ी ही दूर तक हानिकारक होते हैं, साथ ही बल, बुद्धि आदि को हानि पहुँचने के कारण हम धन आदि कमाने में भी बहुत कुछ असमर्थ हो जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि दुःख, शोच आदि पाप के कारण होते हैं और आनन्द धर्म का कारण है। कैसे सुन्दर नियम हैं हमारे उस परमपिता के, मानो हमको यह आज्ञा है कि हम चिन्ता शोच आदि न करें या कम से कम इनसे बचने की कोशिश करें और आनन्दित रहें या आनन्दित रहने की कोशिश करें और उसने आनन्दित रहने के लिए पूर्वोक्त प्रकार से हमको सामग्री असीम दे रक्खी है। इससे कैसे स्पष्ट प्रकार से यह प्रतीत होता है कि अपना और जगत का भला, उन मृतकों का भला भी जिनको लोग रोया करते हैं और रो कर प्रेम का प्रकाश करते हैं परन्तु वास्तव में उक्त प्रकार उनकी परम हानि के कारण बनते हैं, उन सबका भला केवल आनन्दित रह कर ही हम कर

सकते हैं । हमारे विचार के कामों में मानो जबान हाल से अर्थात् प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो परोक्ष रूप से, सारा संसार, हमारे भाई, बहिन, स्त्री, बच्चे, अपने, पराये, राजा, प्रजा, छोटे, बड़े, भले, बुरे, हमारे पिता, माता, दादा, दादी, पड़दादा, पड़दादी, नाना, पड़नाना, नानी, पड़नानी, आपके भी दादा, पड़दादा, दादी, पड़दादी, नाना, पड़नाना, आदि इस लोक के निवासी और परलोक के निवासी, सारे ब्रह्माण्ड भर के समस्त जीव, पशु-पक्षी आदि सहित बल्कि जड़ पदार्थ भी और स्वयं ईश्वर भी अपनी संतान की शुभचिन्तना के कारण कृष्ण-भगवान् के गीता के अठारहवें अध्याय के ६६ श्लोक के शब्दों में 'मा शुचः' (चिन्ता मत करो) ही कहता प्रतीत होता है । मानो ईश्वर और सारा संसार हमसे अपील करता है कि, यदि तुमसे धर्म भी नहीं होता है तब भी ख़ुदा के वास्ते फ़िक्र न करो और ख़ुश रहो ।

किसी विश्वासी अँगरेज़ी के कवि ने कैसा अच्छा कहा है, "Yes, God is paid when man receives, to enjoy is to obey." अर्थात् "जब मनुष्य परमात्मा के दिये हुए पदार्थों को ग्रहण या स्वीकार करता है तो वह मानो ईश्वर को बहुत कुछ देता है" आनन्द लेना ही आज्ञापालन है, इन बातों को सोच कर स्पष्ट हो जाता है कि जब हम उक्त प्रकार आनन्द से रहने की कोशिश करते हैं या इस अपील पर अमल करते हैं तो हम ईश्वर की और सारे संसार की इन सब अपील करने वालों की मानो हृदय-आकाश से आकाशवाणी सुनते हैं कि "तुमने हम पर महान् कृपा की और भारी अहसान किया ।"

नोट— (१) आनन्द से न रहने में भी आनन्द ही मानने के विषय में पास ही अन्यत्र लिखा गया है और आगे विश्वास के माहात्म्य में भी कुछ कहा जायगा ।

नोट (प्लेग वाले जहाज़ की कहानी)

कवि ने कैसे अच्छे शब्द परमात्मा के मुख से कहलाये हैं मानो ईश्वर हम में से प्रत्येक अपने प्यारे बच्चे या भक्त को कहता है:—

"वह मुस्कराता मुखड़ा सन्मुख रहे हमारे।
इसकी एवज़ में चाहे सर्वस्व ले ले सारा॥

इस आनन्द का एक फल यह भी होता है कि, इससे धर्म का उत्साह और पाप से घृणा, धर्म के काम करने और पाप से बचने के लिए अर्थात् काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि को जीतने के लिए आत्मिक बल हमारे अन्दर प्रतिक्षण भरता जाता है। हमारे विचार और भाव और जीवन भी उच्च होते चले जाते हैं और जैसा कि पहिले कह आये हैं हमारे अन्दर बुद्धि, बल, तेज, प्रेम, साहस, पुरुषत्व, दृढ़ता, पराक्रम आदि बढ़ते जाने के कारण हम धन, विद्या आदि सारे पदार्थों और गुणों में उन्नत होते जाते हैं और अपने और अपनों को इस लोक और परलोक के सुख के साधनों में उन्नत करते जाते हैं। और (शायद यह कहा जा सके कि हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के साधनों में अपने को उन्नत होता पाते जाते हैं।

(१३) लोग तो प्रायः यह कहा करते हैं कि खाना, पीना, सोना और साथ ही शायद हँसना भी और दुनियाँ के व्यवहार आदि सब पाप के काम हैं और असल धर्म्मात्मा वही समझा जाता है कि जो सब कुछ छोड़ छाड़ कर जंगल में जा रहे और कुछ खावे पीवे नहीं और न सोवे, केवल भजन किया करे कि जो मन का काम है और दुनिया के काम करते हुए भी हो सकता है और तन को निकम्मा ही और परोपकार-हीन बना लेवे और उसका वसुधा-रूपी कुटुम्ब तो एक ओर रहा अपने माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री, बच्चे आदि तक भी चाहे जहन्नुम में जायें बाज़ लोगों की निगाह में तो ये दुश्मन समझे

जाते हैं कि जो पूर्व जन्मों का बदला लेने के लिए माता-पिता भाई बहिन आदि बने हैं। कहा जाता है कि उनकी परवा कुछ न करो और एक परमस्वार्थी के समान केवल अपने कल्याण का यत्न करो। परन्तु शास्त्रों के मंतव्यों को विचारा जावे और बुद्धि से भी काम लिया जावे तो धन्यवाद है परमात्मा का कि यह बात भूल ही प्रतीत होगी। इसके विषय में आगे व्यवहार आदि के सम्बन्ध में भी कहा जावेगा। यहाँ एक श्लोक फिर पढ़ता हूँ जो पहले पढ़ा जा चुका है:—

आत्मा त्वं गिरिजापतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत् कर्म्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥

जिसका मतलब है कि जगत्पिता शम्भु को कहा जाता है कि "हे शंभो! मेरी आत्मा तू है और मेरी बुद्धि श्रीपार्वती जी (जगत्माता) हैं, मेरे प्राण तेरे साथी हैं, मैं तेरे पदार्थों का बच्चों के समान जो यथोचित भोग लेता हूँ वही तेरी पूजा है, मेरा सोना समाधि है, मेरा चलना फिरना प्रदक्षिणा है, मेरा प्रत्येक वचन तेरी स्तुति है और (कहाँ तक कहूँ) जो जो काम मैं करता हूँ वह सब तेरी ही आराधना है"। इस श्लोक पर यदि विचार कर ध्यान दिया जावे कि माता, पिता अपने बच्चों को खाते, पीते, सोते, पढ़ते, लिखते इत्यादि काम करते देख कर प्रसन्न हुआ करते हैं, तो सहज ही समझ में आजावेगा कि श्लोक का मन्तव्य सर्वथा ठीक ही है। इसके अतिरिक्त भूख, प्यास निद्रा आदि को ईश्वर ने ही बनाया है और अन्न-जल आदि भी उसीने उत्पन्न किये हैं, तो क्या इसमें उससे भूल हो गई होगी?

कोई चाहे कुछ समझे और कुछ कहे, हमतो यह समझते हैं और यह समझ कर आनन्द उड़ाते हैं, उस आनन्द का लाभ उठाते हैं और कई प्रकार के विचारों से हम इसी को धर्म भी समझते हैं कि हम उसके बच्चे और परम प्रेम के पात्र हैं और जब हम उस अनन्त प्रेमी पिता के पदार्थों का उचित प्रकार से भोग लेते हैं तो हृदय-आकाश से उसकी यह आकाशवाणी होती है कि "मेरा इन पदार्थों को उत्पन्न करना और मेरे उन बच्चों का परिश्रम जिनके द्वारा यह पदार्थ काम में आने योग्य हो गये सफल हो गया" और विपक्षी महाशय उस आनन्द और इस आनन्द के लाभ से वंचित रहते हैं। और हम यह भी सोच कर आनन्द लिया करते हैं कि यदि हम सोवें नहीं या खावें पीवें नहीं तो हम बीमार होकर जहरीलापन फैलाते हैं और उसके विपरीत सोने, खाने, पीने, हँसने आदि से हमारे स्वास्थ्य की उन्नति होती रहती है, हमारे अन्दर से अमृतमय परमाणुओं के प्रभाव निकलते हैं और उस समय हम उस पिता की दृष्टि में प्रतिक्षण अधिक से अधिक गुणयुक्त और प्यारे और उसके सारे परिवार की परम सेवा के कारण बनते जाते हैं। हम इसको कदापि अत्युक्ति नहीं समझते हैं कि हमारा खाना, पीना, सोना आदि ब्रह्मांडपति ईश्वर पर और सारी सृष्टि पर बड़ा एहसान करना है और वह एहसान और भी अधिक हो जाता है जब हम प्रातः स्मरण के इस श्लोक:—

"लोकेश चैतन्य मयाधिदेव
मांगल्य विष्णो भवदाज्ञयैव।
हिताय लोकस्य तवप्रियार्थं
संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये" ॥

के अनुसार खानपान आदि लीला को उसके आज्ञा-पालनार्थ और उसकी सन्तान के उपकारार्थ करते हैं और उससे भी अधिक जब हम उनके फलों को विचार कर आनन्द मानते हैं। ओह ! मनुष्य जाति तेरा परम सौभाग्य ! ओह प्यारे परमात्मन् ! तेरे सुन्दर नियम ! बधाइयाँ प्यारे भाइयो और बहिनो तुमको और बधाइयाँ मुझको ! इसी को विचार कर छोटी सन्ध्या आदि को भी सोच लीजिये।

(१४) धृति, क्षमा, सत्य, अक्रोध, दान, वीर्य्य की रक्षा आदि जो कठिन कठिन बातें हैं वे धर्म्म नहीं हैं किन्तु धर्म्म (शरणागत धर्म्म के या यों कहिये कि आनन्द के या विश्वास के या छोटी सन्ध्या) के लक्षण या फल हैं जो विश्वासी के या छोटी सन्ध्या करनेवाले के अन्दर आनन्दामृत के पिये जाने से आपही आप आते रहते हैं। यह सच है कि जो भी काम धर्म्म के कहे जा सक्ते हैं उनमें चाहे जितना कष्ट वे बदनामी या धनादि की हानि का भय हो परन्तु उनके करने में और जो अधर्म्म के काम कहे जा सकते हैं उनमें चाहे, किसी प्रकार के और कितने ही लाभ और सुख की आशा हो उनके परित्याग में विश्वासी को तत्काल ही ईश्वर की "शाबाश शाबाश" और " ओं भूः " की आकाशवाणी हृदय-आकाश से निकलती हुई सुनने और सारे संसार के समस्त चराचर में सुन्दर प्रभाव फैलने का ऐसा आनन्द और लाभ तत्काल ही प्रतीत होता है कि वह अधर्म्म पर चलने से प्राप्त किये हुए चक्रवर्ती राज्य तक को भी बिलकुल तुच्छ गिनता है और बड़ा मंहगा सौदा समझता है। और धर्म्म के रास्ते पर चलने में यदि कष्ट या बदनामी या कोई हानि कैसी ही उठानी पड़े कि जिसके बदले में पूर्वोक्त प्रकार आनन्द और लाभ की प्राप्ति तत्काल होवे तो वह उस आनन्द और लाभ को इन

दामों में बहुत बहुत और बहुत ही सस्ता समझता है। परन्तु सत्कर्मों के करने और असत्कर्म्मों के छोड़ने का तगादा करना बहुत अनुचित है। यह तो छोटी सन्ध्या आदि का अमृत पान करते रहने और उससे आत्मिक-बल आदि आते रहने से आपही होता रहेगा, विशेषतः जब खोंचे वाले की कहानी की तरह लोगों को स्वर्ग से ऊंचे आनन्द का मज़ा चखने और इतने बड़े लाभ का अनुभव होगा कि जो ऐसा सस्ता ख़रीदा जा सकता है और जिससे बड़ा लाभ और आनन्द होई नहीं सकता। लोग तो बहुत छोटे छोटे लाभ और सुख ही को बड़ा मंहगा खरीदते फिरते हैं, तो उसको क्यों नहीं खरीदेंगे। इस ऐसे सस्ते और नफ़े के सौदे की ख़बर लोगों को एक बार होनी चाहिये, फिर तो रोकने से भी नहीं रुकेंगे। दुनिया में आप इस प्रकार की बातें देखते ही हैं। लोग अकसर कहा करते हैं कि धर्म्म कमाना और पाप का परित्याग बहुत कठिन है और उसका परिणाम अब तो दुःख और हानि है, आगे को उससे सुख और लाभ होने की आशा है और यह कि पाप करना आसान है और उससे अब सुख और लाभ होता है और आगे को दुःख और हानि होगी। काम करना और पाप के काम न करना मनुष्य के लिए उचित और मंगल दायक है परन्तु उक्त निवेदन पर विचार करने से स्पष्ट हो जावेगा कि प्रथम तो छोटी सन्ध्या आदि इतने बड़े धर्म्म के काम हैं कि उनसे अधिक और धर्म्म हो ही नहीं सकता। और इनसे अब तत्काल भी और आगे को भी उस अनन्त आनन्द और लाभ की प्राप्ति का निश्चय है और सुगम यं इतने हैं कि इनसे अधिक सुगमता तो हमको किसी काम में दीख नहीं पड़ती और समझने के लिए भी यह इतनी सुगम बात है कि इससे अधिक सुगम कोई और बात हो ही नहीं सकती। जब यह जान लिया कि वह हमारी परम प्रेममयी माता है और मन

में विचारा कि माता के प्रेम आदि को जानवर का बच्चा भी पैदा होते ही अनुभव करता है तो फिर ये सारी बातें समझ में आ जाती हैं और अपराधक्षमापन स्तोत्र का पहला श्लोक यहाँ भी पढ़ा जाना उचित है:—

"न मंत्रं नो यंत्रं तदपि न च जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि न च जाने स्तुतिकथा।
न जाने मुद्रास्ते तदपि न च जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुशरणं क्लेशहरणम्"॥

दूसरे जैसा कि मैंने अभी सिद्ध करने की कोशिश की है सत्कर्म्मों के करने में और असत्कर्म्मों के परित्याग में भी अब भी महान् लाभ और आनन्द है और आगे को भी। रहा पाप। इसके विषय में पाप करने वालों से पूछो कितने कितने प्रयत्न उनको करने पड़ते हैं कितना सोच और भय में होकर उन बेचारों को गुज़रना पड़ता है, और फिर सफलता के विषय में बेचारों को सदा सन्देह रहता है और पूरी सफलता यदि हो भी जावे तो वह बड़ी ही एक क्षुद्र वस्तु है और उसका सुख बड़े तुच्छ प्रकार का क्षणिक सा हुआ भी तो फिर तुरन्त ही दु:ख का सामना होता है और यह भी याद रहे कि वह सफलता उस पाप के कारण नहीं हुई किन्तु पिछले कर्म्मों का फल है। और सफलता न होने की दशा का और आगामी परिणामों का तो कहना ही क्या है और उससे जो नीचता और अपवित्र संस्कार फैलते हैं वे रहे अलग।

यहाँ यह एक वचन याद आता है जो आपको सुनाने योग्य है अर्थात् दुनिया परस्त की उम्मीद आइन्दा की—(माथे पर हाथ रख कर) न जाने इस ठीकरे में क्या क्या लिखा है।

हक़ परस्त की उम्मीद आइन्दा की—मुझको निश्चय है कि जो कुछ भी मुझ पर गुज़रेगा—उसी में मेरा पूरा मंगल होगा ।

(१५) धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, सत्य, अक्रोध, वीर्य्य की रक्षा आदि को प्रायः लोग धर्म्म कहा करते हैं और यह भी कहा करते हैं कि उनको धारण करो और पुण्य के काम करो और पाप के काम न करो और इससे भी अधिक योग साधन करो तो तुमको ईश्वर की प्राप्ति होगी और तुम धर्म्मात्मा बनोगे नहीं तो नहीं और साथ ही यह भी कि इन कामों का करना और पाप से बचना बहुत ही कठिन काम है और राजा हरिश्चन्द्र और मोरध्वज आदि के दृष्टान्तों को उपस्थित कर दिया करते हैं । मेरी राय में दुनिया में जो पाप हैं और धर्म्म की कमी है उसके जिम्मेदार यही हमारे भोले भाले भाई हैं कि जो उक्त प्रकार की शिक्षा देते हैं और जो उपनिषदकार के असली अभिप्राय को न समझ कर लोगों को सुनाया करते हैं कि धर्म्म पर चलना मानो तेज तलवार की धार पर चलना है और उसके साथ यह कहते हैं कि जन्म-जन्मान्तरों तक इस प्रकार के महा कठिन बल्कि असम्भव कार्यों को किये जाओ, उससे अब तो दुःख ही होगा परन्तु कभी न जाने कितने हज़ार जन्मों के पश्चात् सुख होगा और वह भी यही कि केवल एक मात्र तुम्हारा जन्म मरण छूट जावेगा । इसका मतलब असली पहलू से देखने पर यह जान पड़ता है कि इस धर्म्म कमाने वाले का नाश या अभाव हो जावेगा । इस प्रकार की शिक्षा का परिणाम यह होता है कि लोग बेचारे घबड़ा जाते हैं और निराश हो जाते हैं और पूर्वोक्त प्रकार उसके अन्दर शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक, निर्बलता पैदा होती जाती है, काम-क्रोधादि के वे शिकार बनते जाते हैं । और जहरीला पन उनके अन्दर से निकल निकल कर दूसरों के दुःख का कारण बनता और उनको नीचे ही को गिराता चला जाता है । हमारे उक्त शिक्षकों

को छोटी सन्ध्या सम्बन्धी शास्त्रों आदि के–"सर्व धर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"-..
........" और–"अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपि वा......"
और "महादेव महादेवेति..................." आदि अनेकानेक अमृत-वचन विपरीत प्रतीत होते हैं। वे उनकी ओर ध्यान दिलाने पर भी ध्यान देना नहीं चाहते हैं। यहाँ पर एक हंसी की सी बात याद आती है कि जिससे हमारा अभिप्राय भले प्रकार से हृदयों में जगह कर सकता है। दो मुसल्मान आपस में दोस्त थे। उनमें से एक मिलने के लिए दूसरे के घर पर गया। बातें करते करते नमाज़ का समय आ गया। घर वाला नमाज़ी था। उसने अपने दोस्त से कहा कि चलो नमाज़ पढ़लें। उसने जवाब दिया, "क्या मैं कुरानशरीफ़ का विरोधी हूँ जो नमाज़ पढ़ूं?" दोस्त ने पूछा "क्यों नमाज़ पढ़ना कुरान शरीफ़ में मना है?" उसने कहा "बेशक" क्या आप नहीं जानते हैं कि लिखा है कि "हर्गिज न पढ़ो तुम नमाज़"।" दोस्त ने कहा "आगे तो देखो क्या लिखा है?" जवाब दिया कि "सारे कुरान पर तू चलता होगा और तेरा बाप चलता होगा, हमतो इतने ही को निभा सकते हैं।" बात यह है कि कुरान शरीफ में ये शब्द आये हैं कि "हर्गिज न पढ़ो तुम नमाज़ वदून वज़ू के" अर्थात् वज़ू करके नमाज़ पढ़नी चाहिए। इस आलसी मुसल्मान ने अपने मतलब के इतने ही शब्द ले लिए कि "हरगिज न पढ़ो तुम नमाज़" और बाक़ी को छोड़ दिया; इसी प्रकार हमारे शिक्षकों ने भी उक्त प्रकार के वचन शास्त्रों में से ले लिये हैं परन्तु इन विचारों ने कष्ट पहुँचाने वाले और अति कठिन एक असम्भव प्रकार का धर्म्म सिखलाने वाले वचन लिये हैं और उन्हीं शास्त्रों में जैसा कि मैंने सिद्ध किया है जो खोटे से खोटे और मूर्ख से मूर्ख मनुष्य के लिए भी धर्म्म के मार्ग पर ले जाने को संभव ही नहीं किन्तु बड़ा और

अत्यन्त सुगम और हर्ष-दायक और उत्साह-जनक बना देने वाले अति उत्तम वचन छोटी सन्ध्या सम्बन्धी भरे पड़े हैं और बुद्धि मन और अनुभव भी जिनकी साक्षी पूर्ण-प्रकार से देते हैं और जिनको ग्रहण करके हम महान् लाभ उठा रहें हैं। उन वचनों को उन्होंने तो छोड़ दिया है और हमने उनको पकड़ लिया है। परन्तु हमने दूसरे वचनों को छोड़ा नहीं, उनका मतलब हम और कुछ समझते हैं। शास्त्रों में धर्म्म को कठिन और एक तेज छुरे की धार पर चलने के समान बतलाया है। इसका मतलब हम यह समझते हैं कि कहीं कहीं धृति, क्षमा, इन्द्रियों का दमन, सत्य-भाषण, असत्य का परित्याग, वीर्य्य की रक्षा, यम, नियम, आदि के पालन, योग-साधन, विद्या और वेदों के अर्थ-सहित अध्ययन आदि को भी एक प्रकार के विचार से धर्म्म कहा गया है और यह सच है कि बेचारे मनुष्य के लिए बिना ईश्वरीय शक्ति के विशेषत: इस युग में इनका पालन करना अर्थात् ऐसे धर्म्म पर चलना वास्तव में अति कठिन और असम्भव और तेज छुरे की धार पर चलने के समान है। अधिकतर इसलिए भी कठिन है कि इस धर्म का परिणाम कोई बड़ा मन को लुभाने वाला भी नहीं है परन्तु शास्त्रों के असली तात्पर्य को विचारा जावे तो प्रतीत होगा कि ये बातें असल में धर्म्म नहीं है किन्तु धर्म्म के लक्षण या धर्म्म-रूपी वृक्ष के फल हैं। गीताजी के अट्ठारहवें अध्याय के छियासठ (६६) वें श्लोक में कहा गया है कि इन सब बातों को या इस प्रकार के असंभव "धर्म्मों" को कि जिनका पूर्णतया और यथोचित निष्काम होना भी कठिन होने के कारण वे अधर्म ही की गणना में आ सकते हैं। ~~इस सम्बन्ध में तुलसीदास जी ने भी कैसा सुन्दर और मिलता जुलता भाव प्रगट किया है:—~~

तुलसी मिटे न मोह तम , किये कोट गुणग्राम ।
हृदय कमल फूले नहीं , बिन रवि कुल रवि राम ॥

इनको छोड़ कर परमात्मा की शरण में या उस परम पिता के चरणों में या गोद में आओ कि जहाँ परिपूर्णता निवास करती है और जहाँ उक्त प्रकार हम तत्काल पवित्र और परम परोपकारी और सारे संसार को निहाल कर देने वाले इत्यादि बन जाते हैं और इस प्रकार के धर्म्म या छोटी संध्या आदि से धृति, क्षमा, प्रेम आदि हमारे अन्दर शनैः शनैः आपही आप आते जाते हैं ।

इस प्रकार की शिक्षा से बड़े से बड़े गिरे हुए और मूर्ख से मूर्ख और पापी से पापी मनुष्य के अन्दर भी धर्म्म का उत्साह हो जाना सम्भव है और सारे संसार में पाप का अभाव और धर्म्म का राज्य हो जाना कुछ समय का ही काम प्रतीत होने की संम्भावना हो जाती है ।

हम तो प्रायः कह दिया करते हैं कि पाप खूब करो और और कोई भी धर्म्म का काम न करो केवल छोटी सन्ध्या कर लिया करो और तुमको निश्चय हो जावेगा कि जिस अभिप्राय से तुम पाप करते हो या धर्म्म का त्याग करते हो वह अभिप्राय लाखों करोड़ों दर्जे पाप के न करने से या धर्म्म के करने से सिद्ध हो जाता है । जहाँ छोटी सन्ध्या का आनन्द और लाभ एक बार मनुष्य ने प्राप्त किया नहीं बस फिर क्या है काम बन गया । पाप करने और धर्म्म के त्यागसे उस आनन्द का और उस आनन्द के लाभ का अभाव उसको प्रतीत होने पर महा कष्ट और महा हानि प्रतीत होती है और वह आपही पाप से बचने और धर्म्म पर चलने का संकल्प कर लेता है परन्तु यदि उक्त शिक्षकों के समान मनुष्य को पाप छोड़ने और धर्म्म पर चलने के लिए कहा जावे तो उक्त प्रकार उसको साहस ही न हो और बड़ा कष्ट हो और उसके कारण और आत्मिक निर्बलता आने से काम क्रोध आदि का

शिकार बनजावे और बे-हिम्मत हो कर दु:खी और नीचे को गिरने वाला इत्यादि बन जावे। (देखो खोंचे वाले लड़के की कहानी) उदाहरण के तौर पर मान लीजिये कि कोई पुरुष एक वृक्ष को समझाता है कि तू भली भाँति पत्ती, फल-फूल आदि लाया कर ~~मैं तुझको काट डालूंगा~~ तेरी बड़ी क़दर होगी और उसको धमकाता भी है कि यदि तू मेरा कहा नहीं मानेगा और खाद, पानी आदि उसको देवे नहीं और उसके विपरीत एक दूसरा पुरुष अपने वृक्ष को खाद और पानी तो ख़ूब देवे परन्तु उसको कह दे कि फल, फूल आदि मत लाना, तो आप भी जानते हैं और मैं भी कि परिणाम यह होगा कि पहले आदमी का वृक्ष तो समझाने और धमकाने पर भी फल फूल आदि लावेगा नहीं और दूसरे का मना करने पर भी ख़ूब फले फूलेगा। इसी प्रकार किसी मनुष्य को छोटी सन्ध्या का आनन्द दीजिये और उसको कह दीजिये कि पाप किया कर और एक दूसरे मनुष्य को पाप छोड़ने और पुण्य करने का उपदेश कीजिये तो आनन्द के स्थान में उसको फिक्र हो जायगी। परिणाम प्राय: यह होगा कि पहिला मनुष्य तो धर्मात्मा बन जायगा और दूसरा उसके विपरीत होगा।

इस बकवाद का सार यह है कि इन्द्रियों को दमन करने और मन को रोकने की शिक्षा के मैं विरुद्ध हूँ। प्रथम तो कठिन होने के कारण मनुष्य को इनका साहस ही कम होता है, दूसरे कोई साहस करे भी तो प्राय: यह होता है कि एक नदी में बंद लगने पर पानी रुक जाने के समान वह दशा होती है जो पानी बहुत इकट्ठा होजाने पर एक ही बार टूट कर पहले से भी अधिक उसके वेग को कर देता है। मेरी राय में मन और इन्द्रियों को रोकने के बदले उनको नदी में से नहर निकालने के समान छोटी सन्ध्या आदि संबन्धी महान् आनन्द

और महान् लाभ की ओर ले जाना और लगाना चाहिये (कहानीदल-दल और सितारा क़िला फ़तेह हो गया, अलजब्रे के मसावात।

(१६) हमको सोते, जागते, खाते, पीते, नहाते, धोते, लिखते, पढ़ते, सौदा मोल लेते तथा बेचते, कार व्यवहार करते, गृहस्थ आदि के सब काम करते हुए, सुख, दुःख, यश, अपयश, जीवन, मरण आदि प्रत्येक दशा में हर समय यह प्रतीत होने लगता है कि ईश्वर के हाथ में मानो माला है और वह हमारा वही "ओं भूः ओं भूः" का निरन्तर जप कर रहा है कि जिससे हमको और भी आनन्द और उस आनन्द के लाभ प्राप्त होते रहते हैं। और हमारे जीवन का एक एक पल केवल हमारे (एक व्यक्ति के) जीवन-मरण से छूट जाने का नहीं किन्तु सारी सृष्टि के लिए बड़ा और अत्यन्त सफल तथा उपयोगी बनता जाता है। और सारी सृष्टि को हमारे लिए ऐसा ही उपयोगी बनाता जाता है। यह एक महान् आनन्द की दशा है कि जिसको जीवन-मुक्ति की दशा कहना शायद अनुचित या अत्युक्ति न हो! अनेक राज्यों का लाभ इस दशा के आगे कुछ भी नहीं प्रतीत होता। प्रत्येक मनुष्य, पापी से पापी और मूर्ख से मूर्ख भी इस दशा में बहुत जल्दी बल्कि तत्काल अपने आपको पहुँचा हुआ पा सकता है।

ईश्वर और उसकी सारी विभूति उसको अपनी आँखों से नजर आती है, सारा संसार उसको अपना और अपने सब प्यारों का अत्यन्तमंगल का कारण बना हुआ और बनता हुआ दीख पड़ता है। वह अपने सारे काम ईश्वर और सृष्टि के प्रेम और धन्यवाद और कृतज्ञता से भर कर आनन्दपूर्वक निष्काम होकर और परमार्थ के भाव से प्रेरित करने लगता है। और उन कामों को ईश्वर अपने प्यारे पिता की प्रसन्नता और ईश्वर की सन्तान अर्थात् अपने वसुधारूपी प्यारे कुटुम्ब के परम हित का कारण समझ कर आनन्द से भरा रहता है। द्वेष-

भाव किसी से रखने की उसको कोई आवश्यकता ही नहीं रहती है। प्रथम तो सब उसको अपने प्यारे और अपने परम पिता के प्यारे नज़र आते हैं। दूसरे सब उसको अपने महा हितकारी प्रतीत होते हैं कि, जिनके चरणों की रज तक में से उसको महान् लाभ पहुँचाने वाली लहरें या असर प्रतिच्चण निकलते प्रतीत होते हैं।

शास्त्रों में ज्ञान को मुक्ति का कारण बतलाया जाता है और साथ ही यह भी कहा जाता है कि "अपने आगे से पुष्प के उठाने में देर लगती है और ज्ञान की प्राप्ति में देर नहीं लगती।" और यह सच है, हम को केवल यह जानना है कि ईश्वर हमारा माता पिता है और हम उसके बच्चे हैं और फिर वे सब बातें साक्षात् हो जाती हैं कि जिनका वर्णन मैंने किया है। "परं जाने मातस्त्वदनुशरणं क्लेशहरणम्"कहने वाला मनुष्य अपने आपको जीवनमुक्त अनुभव करने लगता है और अपने वसुधारूपी कुटुंब को अपने से भी उत्तम पाने लगता है (संख वाली कहानी)। इस प्रकार का ज्ञान या विश्वास बहुत ही शीघ्र प्राप्त होना संभव है। उसके लिए वेदादि के पढ़ने की आवश्यकता नहीं; गीता के दूसरे अध्याय के पूर्वोल्लिखित ४६वें श्लोक (यावानर्थ उदपाने...) से भी स्पष्ट सिद्ध होता है कि ब्रह्म का ज्ञान बिना वेदों के हो सकता है, बल्कि सब के अन्दर मौजूद है" परन्तु जिस ज्ञान का प्रायः लोग वर्णन किया करते हैं उससे परमात्मा बचावे। लोग कह तो दिया करते हैं कि उसकी प्राप्ति पुष्प उठाने से भी कम समय में हो सकती है परन्तु उसके साधन जो बतलाए जाते हैं, बाबा रे, बाबा रे, और मैया री, मैया, उनको बिचारा जावे और (उस ज्ञान के बतलाने वाले इस बात को स्वयं भी कहते हैं) वे ऐसे कठिन हैं कि जन्म जन्मान्तरों तक मनुष्य देह धारण करके वेदादि को पढ़ कर, निष्काम कर्म, यम नियमादि का पालन, योग

साधनादि करते रहो, तेज़ छूरे की धार पर चलने के समान कठिन धर्म्म का पालन करेते रहो, राजा हरिश्चन्द्रादि से अधिक कष्ट उठाते रहो तब शायद कुछ थोड़ा सा काम बने और वह भी तब कि जब बीच में कुछ विघ्न न पड़े और विघ्नों की संभावना भी इतनी बड़ी बतलाई जाती है कि उनका न पड़ना हमारी समझ में तो असंभव ही है—परन्तु जिस ज्ञान का वर्णन शास्त्रों में है उसको प्राप्त करना बहुत ही सुगम है।

यहाँ इस अंगरेज़ी वचन द्वारा एक मंतव्य को प्रकाशित करना आवश्यक है "Our greatest glory consists not in never falling: but in rising every time we fall," जिसका अर्थ है "मनुष्य का (अर्थात् एक भक्त या विश्वासी का अर्थात् एक जीवन-मुक्त पुरुष का कम से कम इस लोक में) सबसे बड़ा गौरव या महत्व इसमें नहीं है कि वह कभी गिरे नहीं—(अर्थात् पाप न करे) किन्तु इसमें है कि जब वह गिरे (अर्थात् जब उससे पाप हो जावे) तब ही तुरन्त उठ जावे (अर्थात् "पिताजी सब आप के भक्त बन जावें" आदि कहता हुआ तुरन्त ही ईश्वर के चरणों में पहुँच जावे) और उनकी "माशुचः" और "ओंभूः" आदि की मधुर वाणी सुनता हुआ अपने आप को पावे—जिससे उच्च दशा कोई होही नहीं सक्ती। बात यह है कि पूर्व कर्मों के संस्कारों और अनेक कारणों द्वारा (जिनका वर्णन गर्भाधान और वीर्य्य की रक्षा के संबंध में आगे होगा) परमात्मा के परम बुद्धिमय और परम मंगलमय प्रबन्ध से विश्वासी के अंदर आरंभ में तो अधिक और फिर कम आत्मिक निर्बलता रहती है। कोई मनुष्य विश्वास लाते ही तुरन्त इतना आत्मिक बल प्राप्त नहीं कर लेता कि काम क्रोधादि को पूर्णतया विजय कर लेवे और इस कारण से उससे कभी२ वे कर्म हो जाते हैं जो पाप कहलाते हैं परन्तु भक्त पाप के होते ही तुरन्त परम पिता जी के चरणों

में उक्त प्रकार पहुँच कर परम उच्च दशा को तत्काल प्राप्त कर लेता है कि जिससे आनन्द का आत्मिक भोजन मिलने आदि के कारण उसके अंदर आत्मिक बल आता जाता है और वह काम क्रोधादि को जीतने के लिए अधिक २ समर्थ होता जाता है और जब उससे पाप हो जाता है तो उसको वह ~~वह~~ ईश्वर के प्रबन्ध का एक अंग, और अपने मंगल का एक आवश्यकीय कारण समझ कर उसमें शिकायत न करने या दुःख न मानने और हर्ष मानने की कोशिश करना अपना धर्म्म और अपने परम पिता की आज्ञा समझता है। ऐसा करते समय उसको इस विचार से बड़ी सहायता मिलती है कि पाप होते समय भी प्रभाव तो सुंदर ही फैलते रहते हैं और वास्तव में परोपकार उसके रोम २ से उतना ही होता रहता है कि जितना पाप न होने और परम धर्म के होने की दशा में होता। उसके जीवन के उद्देश के पूरा होते रहने और असलियत के विचार से उसके जीवनमुक्त होने में कोई बाधा नहीं पड़ती है (कहानी स्वामी राम का इक़रारनामा और करण के और अर्जुन के बाण)

(१७) ईश्वर को यदि कल्पित भी माना जावे और इस प्रकार के विचार मन में ला कर उक्त प्रकार यह अति सुगम छोटा सा साधन या छोटी संध्या की जावे, तब भी आनन्द आने में और आनन्द के फलों में कोई भी भेद किसी प्रकार का पैदा नहीं होता है। इस सम्बन्ध में गालिब का यह शैर यहाँ पढ़ा जाना शायद अच्छा हो :—

हमको मालूम है जन्नत की हकीकत।
दिल के बहलाने को गालिब यह ख्याल अच्छा है ॥

(१८) परन्तु जो मनुष्य ईश्वर को नहीं मानते और कल्पित ईश्वर को मन में लाने में कठिनता अनुभव करते हैं, उनको मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार कोई और विचार वास्तविक या कल्पित मन में लाना

उचित है। और यदि वे मेरी सलाह पूछें तो मैं उनसे यह निवेदन करूँगा कि वे किसी वास्तविक या कल्पित मनुष्य का ध्यान कर लिया करें कि जो एक वास्तविक या कल्पित ईश्वर की प्रसन्नता का और संसार की और उनकी भी बड़ी उन्नति का कारण अपने आप को समझता हुआ आनन्द लूट रहा है और उस आनन्द से सारे संसार में और उनमें भी बड़ा उन्नति उत्पन्न कर रहा है। इससे उसको उसी प्रकार का पूरा आनन्द प्राप्त हो कर उनको उतना ही उपकारी इत्यादि बना देगा।

१९—इस छोटे से साधन या छोटी संध्या से नित्य प्रति यदि काम लिया जाय तो जैसा कि पहिले कह आये हैं मनुष्य अपनी जाति ही नहीं किन्तु सारे संसार की उन्नति का कारण अपने आपको अनुभव करने लग जाता है और उसके सारे काम केवल अपने प्यारे पिता के प्रसन्नतार्थ और अपने वसुधारूपी कुटुम्ब के हितार्थ, प्रेम और आनन्द के साथ निष्काम भाव के साथ होने लगते हैं। वह इस प्रकार के भक्ति-भाव को ऐसा सरस और आनन्दमय समझता है कि ज्ञान उसको बड़ा शुष्क पदार्थ प्रतीत होता है। भक्ति-भाव-विहीन ज्ञानी लोग उसको दया के पात्र नज़र आते हैं। ज्ञान की दशा का जो कुछ आनन्द या लाभ होना संभव है वह इस भक्ति-भाव के अंतर्गत या इस का एक अंग होता है। ज्ञानी पुरुष स्वामी रामतीर्थ के समान अपने आपको ईश्वर और संसार का स्वामी समझता है और भक्त ईश्वर का पुत्र होने के कारण अपने आपको ईश्वर से बड़ा, ईश्वर को पुम् नामक नरक से त्राण करने वाला, उसका नन्दन और उसकी समस्त विभूति और स्वयम् ईश्वर का भी मालिक समझता है। भक्ति की दशा का आनन्द और लाभ ज्ञान के आनन्द से बहुत अधिक होता है इस लिये ज्ञान की दशा की भक्त कुछ भी परवा न कर के गोस्वामी तुलसीदास

जी के इस वचन का अनुभव करता हुआ महान् आनन्द का जीवन व्यतीत करता है:—

कलि नहिं कर्म न योग बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू ॥

परन्तु राम नाम का माहात्म्य केवल कलियुग ही के लिए नहीं किन्तु सदैव काल के लिए मेरी समझ में एक समान है और कर्म, ज्ञान, विवेक, योग, धृति, क्षमा, दम, अस्तेय आदि धर्म के लक्षण और यम नियम का पालन इस नाम के अवलंबन मात्र और इसी शरणागत धर्म-मात्र-रूपी वृक्ष के आवश्यक फल हैं। हो नहीं सकता कि मनुष्य इस सहज साधन से काम लेवे और उसके जीवन में शनैः २ ये सब लक्षण शीघ्र ही न दीखने लगें और यदि मान भी लिया जावे कि ज्ञान की दशा भक्ति की दशा से कुछ अच्छी है तो इस छोटी संध्या के करने वाले को वह दशा अवश्यमेव और शीघ्र प्राप्त हो जायगी। उसके अधिकारी सब से प्रथम और सब से बड़े इस छोटी संध्या के करने वाले होंगे।

सज्जनगण, आइये हम भी उस पवित्र नाम पर विश्वास रख कर आनन्द में मग्न हो कर अपनी कानफरेंस के काम को आरम्भ करें इस लिए कि आनंद ही हमको सफलता का कारण दीख पड़ता है।

लार्ड हार्डिंग पर बम।

यह एक बड़े शोक की बात है कि इस समय हमारे आनंद में विघ्न डालनेवाली एक बड़ी शोचनीय घटना हुई है कि जिससे सारे देश-वासियों को बहुत बड़ा खेद हो रहा है। सारा देश हमारे प्यारे वाइसराय लार्ड हार्डिंग की ओर बहुत ही प्रेम-भरा भाव रखता है। ऐसे हाकिम देश में आज तक आये होंगे तो थोड़े ही

आये होंगे। परन्तु ईश्वर की सृष्टि विचित्र है। ऐसे नेक-दिल और महान् आत्मा व्यक्ति के लिए भी किसी भले आदमी के दिल में द्वेष और इतना बड़ा द्रेष पैदा हुआ कि जब कि बड़ा भारी ऐन ख़ुशी का समय था कि जब हिज़ ऐक्सलेन्सी (His Excellency) का जलूस २३ दिसम्बर १६१२ को चाँदनी चौक में से गुज़र रहा था, ऐन उस वक्त किसी महा दुष्ट पुरुष ने हमारे प्यारे वाइसराय साहिब की जान पर हमला किया; उसने एक बम चलाया और अपनी समझ में तो उसने कोई कसर नहीं रख छोड़ी किन्तु कोटि कोटि धन्यवाद हैं उस परमात्मा को कि उसकी कृपा से लेडी हार्डिंग साहिब को तो किसी प्रकार की चोट तक भी नहीं आई और लाट साहब की चोट तो बहुत सख़्त पहुँची परन्तु उनकी जान बच गई। इस खबर को पा कर मैंने बहैसियत प्रेसिडेन्ट-इलेक्ट् इस कानफ्रेंस के एक तार लाट साहिब बहादुर के नाम और एक लेडी हार्डिंग साहिबा के नाम २४ दिसम्बर को भेजा था। लेडी साहिबा के नाम के तार के शब्द ये थे :—

"Beg to express abhorrence at fiendish outrage. Thank Almighty father for your Excellency's narrow escape and pray for His Excellency's speedy recovery. Baldeo Singh, President-elect All India Vaish Conference, Calcutta."

और लाट साहिब के नाम के तार के ये शब्द थे:—

"Beg to express abhorrence at fiendish outrage. Thank Almighty father for Her Excellency's narrow escape and pray for your Excellency's speedy recovery. Baldeo Singh, President-elect All India Vaish Conference, Calcutta.

ईश्वर करे कि लोगों की बुद्धियाँ शुद्ध हों और वे कोई बुरे काम न करें। इसके सम्बन्ध में मेरी समझ में नियमित रूप से एक मन्तव्य भी इस कानफरेंस में पास होना चाहिये।

साधारण विचार

इस कानफरेंस में जो बातें आपके रूबरू पेश होंगी उन पर पिछले बीस साल से जाति के महानुभाव विचार कर रहे हैं और उन पर जाति को चलाने के लिये प्रयत्न हो रहा है। यद्यपि प्रत्यक्ष में कोई बड़े फल इन विचारों और प्रयत्नों के साधारण दृष्टि डालने पर नहीं दीख पड़ते हैं और बहुत सी दशाओं में इसमें जाति के भाइयों का दोष भी नहीं समझा जा सकता है। किन्तु उसके कारण ऐसे हैं कि जिन पर उनका वश नहीं, जैसे कि पंचायत के लिए भरोसे के पंच न मिलना, इत्यादि। और ऐसे प्रत्यक्ष में बड़े फल न देखकर हमारे कितने ही भाई निराश हो जाते हैं। तथापि सूक्ष्म दृष्टि से देखने वाले इस बीस वर्ष की कार्य्यवाही का बड़ा सुन्दर फल समझते हैं। देखिये तो सही, देश की और जाति की क्या दशा थी। कैसे अज्ञान, पक्षपात आदि का घोर अन्धकार छाया हुआ था। क्या यह सम्भव था कि इतने बड़े अन्धकार की दशा उस समय की वर्त्तमान दशा में दो, चार, दस साल के प्रयत्नों से एक दम अदल बदल जाती ? आप संसार में देखते हैं कि प्रथम एक माली बाग़ीचा लगाने के लिए भूमि तैयार करता है, फिर उसमें फलदार वृक्षों के बीज बोता है, उसमें खाद, पानी आदि देता है। शनैः शनैः वह बीज उग कर एक छोटा पौधा होता है कि जो बढ़ता बढ़ता बरसों में जा कर फल देता है। आपको बहुत बड़ा फल पैदा करना है। यदि आपकी भूमि तैयार हो कर इतने काल में बीज बोया गया है तब भी बड़ा काम हो गया, परन्तु विचार कर देखिये गा आपका पौधा उग आया है। कुछ बढ़ भी गया है और बधाइयाँ आपको कि इस पर कुछ कुछ फल भी लगने लगे हैं। न केवल आपकी जाति के किन्तु देश भर के लोगों के

विचारों में बड़ा भारी परिवर्त्तन हो गया है। आपके जितने मन्तव्य हैं उनमें से एक एक के लिये अधिकतर लोगों की सहानुभूति तो अवश्य ही आपके साथ है। बहुत लोग उन पर चलते भी हैं। पिछले कर्मों और संस्कारों के कारण निर्बलता आदि होने और आत्मिक बल के अभाव से और अन्य कारणों से बड़ा भाग आपकी जाति के मनुष्यों का उन पर नहीं चलता या नहीं चल सकता है परन्तु आपने बहुत बड़ा काम कर लिया यदि विचारों में परिवर्त्तन उत्पन्न कर दिया। आप जल्द ही देखेंगे कि वे विचार कार्य्य में परिणत होते शीघ्र दिखाई देंगे। ईश्वर पर विश्वास कर यत्न किये जाइये आपके मनोरथ अवश्यमेव सफल होवेंगे। इसमें संदेह नहीं है कि जो कुछ काम हुआ है, और जो होने को बाक़ी है उसमें कोई बराबरी नहीं है। बहुत कुछ होने को बाक़ी है। परन्तु जो कुछ हुआ है वह हमारी हिम्मत और हौसले को बढ़ाने के लिए काफ़ी है। साथ ही अधिक सफलता न होने का कारण एक और भी है। उसको वर्णन करने में मैं एक कहानी से सहायता ले कर अपना अभिप्राय सुगमता से प्रकट कर सकूँगा। वह कहानी यह है कि एक लड़का था जिसको गुड़ खाने का अभ्यास था और गुड़ से उसको बहुत हानि होती थी। उसके माता, पिता, गुरु आदि ने उसको बहुत कुछ समझाया, धमकाया, मारा, पीटा, और सब प्रकार के यत्न किये परन्तु लड़के का गुड़ खाना न छूटा और उसके स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचती रही, और वह बहुत निर्बल हो गया। अन्त में उसकी माता उसको एक महात्मा के पास उपदेश कराने को ले गई। महात्मा ने कुछ देर चुप रह कर कहा कि आठवें दिन लड़के को लाना तब उपदेश करेंगे। माता ने बहुत कुछ चाहा कि उपदेश उसी समय हो जावे, और आठ दिन वृथा न जांय परन्तु महात्मा ने न

माना। माता लाचार होकर लड़के को लेकर लौट आई और आठवें दिन फिर उसको महात्मा के पास ले गई। महात्मा ने थोड़ा लड़के को प्यार किया और केवल इतनी बात कही कि "बेटा गुड़ न खाया करो, गुड़ से तुमको हानि पहुँचती है" और कह दिया कि जाओ। परन्तु चलते समय उसकी माता से कह दिया कि आठवें दिन वह उसको फिर ले आवे। उस छोटे से उपदेश से माता को बड़ा क्लेश हुआ। वह जानती थी कि इससे बहुत अधिक बातें लड़के को उसके घर पर सब ने समझाई थीं और अब महात्मा ने एक बेगार सी टाल दी। निराश सी होकर वह लड़के को लेकर घर आई। परन्तु लड़के ने उसी समय से गुड़ खाना छोड़ दिया, और दिन प्रतिदिन उसके स्वास्थ्य में उन्नति होती गई। आठवें दिन बड़ी प्रसन्न होती हुई माता लड़के को लेकर फिर महात्मा के पास गई, और हाल सुनाने के पश्चात् पूछने लगी कि पहिले ही बार महात्माजी ने उपदेश क्यों नहीं किया और आठ दिन क्यों वृथा गँवाये। महात्मा ने उत्तर में कहा कि "माता जी हम आप भी गुड़ खाया करते थे, और उससे हमको भी हानि पहुँचती थी। परन्तु हम गुड़ खाना नहीं छोड़ते थे। अब लड़के पर हमको दया आई। परन्तु हम जानते थे कि हमारे उपदेश में उस समय तेज और बल नहीं था और उस दिन के उपदेश से लड़का गुड़ खाना न छोड़ता, हमने उसी समय गुड़ खाना छोड़ देने का संकल्प करके अपने हृदय में ईश्वर के नाम के स्मरण आदि द्वारा तेज और बल भरना आरम्भ किया। आठ दिन में हमारे हृदय में बहुत कुछ तेज और बल आ गया, तो हमारे उपदेश ने अपना काम किया। हम तेरे लड़के के बड़े कृतज्ञ हैं कि उसके कारण हमारा गुड़ खाना भी छूट गया और हमको और भी बहुत लाभ पहुँचा। तेज और बल आदि बहुत गुण हमको प्राप्त हुए।"

मित्रवर, यह सच है कि जिसके अन्दर तेज और बल होगा उसके ही उपदेश और समझाने से लोग उसके अनुसार कार्य्य करने लगेंगे। वीर्य्य के नाश आदि अनेक कारणों से आज कल के लोग तेज और बल से विहीन हैं। और क्या आश्चर्य है कि उनके लेक्चर आदि को लोग न मानें ? ईश्वर हमारा पिता है, उसके भण्डार, तेज, बल और अनेकानेक गुणों से भर पूर हैं और वे हमारे ही लिए हैं और हमारे ही हैं। यदि हम छोटी संध्या आदि से काम लेते हुए और अनुभवी पुरुषों के इस प्रकार के वचनों से जैसे "चार पदारथ पुत्र हित, लिये खड़े अकुलात। ज्यों सुत को भोजन लियें, करत चिरौरी मात॥" आदि से काम लेते हुए उन तेज, बल आदि के भण्डारों को अपने समझ कर प्रसन्न रहा करें तो हम शीघ्र ही बलवान्, तेजस्वी आदि बन सकते हैं और फिर हमारी वाणी में भी चाहे तत्काल मनोमोहकता और प्रभाव न भी हो परन्तु उससे हमारे मनोरथों की सिद्धि कम से कम परोक्षरूप से तो पूर्वोक्त विचारों के अनुसार अवश्य ही तत्काल प्राप्त हो जायगी और इससे शीघ्र ही प्रत्यक्ष रूप से होने की भी सम्भावना प्रतीत हो जाती है।

प्रेम और एकता।

अब हमको अपनी जाति के प्रयत्नों के फलों की ओर थोड़ा ध्यान देना चाहिए। सबसे प्रथम परस्पर के विरोध दूर होने और मेल जोल होने के विषय में जिस प्रकार की बातें कानफरेंस में होती हैं, उनके विषय में यह वक्तव्य है कि आप भली भाँति समझ सकते हैं कि सब लोग आपकी बातों के मूल्य को जानते हैं। सब जानते हैं कि आपस के झगड़ों का पञ्चायत द्वारा फ़ैसला होना अदालतों की अपेक्षा कितना अच्छा है। अदालत में जाने से कितना रुपया, कितना समय वृथा ख़र्च होता है, कितने लोगों की ख़ुशामद आदि करनी पड़ती

है, शान्ति का कितना ख़ून होता है, यद्यपि प्रायः भरोसे के पंच न मिलने के कारण अदालतों में झगड़े जाते हैं कि जो लोगों की तबाही के कारण होते हैं। अग्रवाल, महेश्वरी आदि के भिन्न भिन्न फिरकों में मेलजोल की आवश्यकता को भी मेरी राय में लोग समझने लगे हैं और परस्पर विवाह-सम्बन्ध और खान-पान की कदर को भी थोड़ा बहुत पसन्द करते हैं, यद्यपि कारण-वशात् इस पर अभी तक अमल बहुत कम होता है, मैं यह अवश्य कहूँगा कि इस विषय में जाति में जो कुछ अब तक हुआ है वह बहुत ही थोड़ा है, कुछ भी नहीं है, यद्यपि यह प्रेमादि का विषय एक बड़ा ही महत्त्व-पूर्ण विषय है। प्रेम की महिमा कौन वर्णन कर सकता है? जिस मनुष्य के हृदय में प्रेम है उसको स्वर्ग के तलाश करने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रेम में जो सुख है वह स्वर्ग से बढ़ कर है। जिस हृदय में प्रेम होगा उसमें ईश्वर अपने सारे ऐश्वर्य और गुणों के साथ आप विराजमान होंगे। प्रेम-विहीन मनुष्य वास्तव में बड़ी दया का पात्र है। ओह! वह नहीं जानता है कि वह अपनी कितनी हानि करता है। बादशाहत का छिन जाना उतनी बड़ी हानि नहीं जितनी बड़ी कि प्रेम का न होना। झगड़ों से और मेल जोल, शादी, विवाह के आपस में न होने आदि से जो कुछ भी धन या समय या आराम या सुगमता की हानि होती है, वह बहुत ही बड़ी है परन्तु सबसे बड़ी हानि तो इसमें यह है कि ईश्वर का निवास आदमी के हृदय में नहीं रहता है और वह ईश्वर से कोई अपनी या अपने प्यारों की भलाई की निश्चयात्मक आनन्ददायिनी आशा नहीं रख सकता है और शांति के जीवन से विहीन हो जाता है। और प्रेम की दशा को इसके विपरीत समझ लो।

इस सम्बन्ध में दो चार बातों पर और बातों की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया जाय तो अच्छा हो।

हम ज़रा सोचें कि जिनसे हम झगड़े करते और द्वेष रखते हैं वे कौन हैं। याद रहे कि "नूरे नज़र हैं वह भी किसी ताजदार के" वे बहुत बड़े राजकुमार हैं, वे राज-राजेश्वर अर्थात् ईश्वर के पुत्र हैं ईश्वर से बड़े हैं। सर्वस्याभिभवंहीच्छेत् पुत्रादिच्छेत् पराभवम् (देखो कहानी नेपोलियन और कारपोरल की)। उनसे वैर-भाव रखना उनसे प्रेम न रखना मानो एक प्रकार से समुद्र में रहना और मगर मच्छ से वैर करना है और उनसे प्रेम रखना, हँस कर बोलना, या उनका भला चाहना, उनके पिता ईश्वर पर एहसान करना है।

हम यह भी याद रक्खें कि सारा संसार हमारा परिवार है और सबसे हमारा बड़ा निकटस्थ सम्बन्ध है। क्या अच्छा हो कि हम सबको अत्यन्त निकटस्थ सम्बन्धी की दृष्टि से देखें। बूढ़ों को माता पिता की, बराबर वालों को भाई बहिन की और छोटों को बेटा बेटी की दृष्टि से देखें। और ऐसे माता पिता, भाई, बहिन और बेटा बेटी उनको समझें कि जो पूर्वोक्त कारणों से अति उत्तम हैं। फिर तो इसी दुनिया में स्वर्ग का आनन्द आने लगे। हम अपने शत्रु या द्वेषपात्र के सम्बन्ध में ठीक ठीक विचार करें, पहले कहे हुए विचारों के प्रकाश में दृष्टि डालें, तो हमको दीख पड़ेगा, कि वह एक अति उत्तम मनुष्य और ईश्वर का मनमोहन है। ऊपर से चाहे वह बहुत बुरा प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में उसके रोम २ में से ऐसे पवित्र और बलवान् प्रभाव या लहरें निकल रही हैं कि जिनसे सारे संसार को और हमको और हमारे सारे परिवार को भी अति उत्तम प्रकार का अनन्त लाभ पहुँच रहा है। वह हमको माने निहाल कर रहा है (देखो कहानी "मेरी गऊ का दूध")। जब कभी हमको किसी से कोई हानि या क्लेश पहुँचता है तो वह हमारे ही कर्मों का फल होता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। इसके सम्बन्ध में प्रथम तो यह विचार पाप के फल भोगने में बड़ा

सहायक होता है कि जैसा कुछ हँसी के तौर पर हमारे मोहिनी भवन में किंचित् भी दुःख की शिकायत होने पर लोग शिकायत करने वाले को कह दिया करते हैं, "पाप न किया करो तो दुःख नहीं होंगे" और "यह कब हो सकता है कि पाप तो करो तुम और दुःख भोगूं मैं ?" इस से प्रायः तुरन्त ही उक्त प्रकार के बड़े उच्च विचार मन में आजाते हैं और क्रोधादि तत्काल शान्त हो जाते हैं। दूसरे यह बात विचारने योग्य है कि जिस मनुष्य के द्वारा यह हानि या क्लेश अर्थात् हमारे पापों का फल हम को मिलता है, वह बेचारा मुफ़ में अपराधी बन जाता है; और यद्यपि यह हमारे लिए कोई शान्ति की बात नहीं होनी चाहिये, परन्तु यह निश्चय है कि वह अपने कर्मों के फल को अवश्य भोगेगा (देखो कहानी मैहकू टंडेल की)। और यदि हम उससे द्वेष आदि करें तो हम आगे को अपने लिए काँटे बोते हैं, इस प्रकार विचारने पर हम अपनी हानि या क्लेश की निवृत्ति उचित धार्मिक रीतियों से पंचायत आदि के द्वारा और शायद प्रेम के के साथ करना पसंद करेंगे। राजा हरिश्चन्द्र, भीष्मपितामह, धर्मराज युधिष्ठिर, महारानी सीताजी, लक्ष्मणजी आदि और और अनेकानेक धर्म पर चलने वालों ने दुःखों अर्थात् अपने पापों के फलों को भोगने में जिस प्रकार लाभ उठाया है और संसार को लाभ पहुँचाया है उस प्रकार हम भी कर सकते हैं और महाराज रामचन्द्र और हजरत मसीह ने जिस प्रकार दुःख से काम लिया है वैसे ही ईश्वर की कृपा से, थोड़ी सी मन की दृढ़ता से हम और आप भी लाभ उठा सकते हैं। हम को अपना आदर्श ऊँचे से ऊँचा रखना चाहिये।

द्वेषादि के समय महात्मा रामतीर्थ और मसीह आदि के इस प्रकार के वचनों से भी बड़ी सहायता मिलती है:—

"जो अपनों से मुहब्बत की तो क्या की ।
निगाहे मेहरो उलफ़त की तो क्या की ॥१॥
जो दुशमन पर करो चश्मे इनायात ।
तो हाँ यह काबिले तारीफ़ हो बात ॥२॥
जो तुम को देखते हैं दुशमनी से ।
दुआ उनके लिए माँगो ख़ुशी से ॥३॥
जिन्हें तुमसे है अज़हद बुग्ज़ो कीना ।
रखो उनकी तरफ़ से साफ़ सीना" ।
"अय अदू ऐंठ ले बिगड़ तन ले ॥
सख़्त कह दे कि सुस्त ही कहले ॥१॥
मुझे भी इन तेरी बातों से रोक थाम नहीं ।
जिगर में धाम न करलूं तो राम नाम नहीं ॥२॥

हमें हिन्दू धर्म के गौरव के भाव से प्रेरित हो कर कार्य करना चाहिये और अपने जीवन से उस गौरव को प्रकाशित और उसका प्रचार करना चाहिए । भलों के साथ भलाई करना कोई विशेषता की बात नहीं, बुरों के साथ भलाई करो तो बात है । बुरों का हमको कृतज्ञ होना चाहिए कि ये हमको अपने साथ भलाई करने का अवसर देते हैं।

कभी कभी विचार करने पर यह भी शायद ज्ञात होगा कि जितने दोष तुम दूसरों पर लगाते हो वे उतने दोष के भागी नहीं या शायद तुम भूल से ही उनपर दोष लगाते हो या शायद उतना ही या कुछ कम या ज्यादा आप का भी दोष हो । कभी कभी यह भी होता है कि छोटी सी बात से दोनों ओर हृदयों में द्वेष आ जाता है (देखो गर्दा उड़ाने वाले की कहानी) और फिर दोनों ओर से ऐसी ऐसी क्रोध-भरी बातें होती हैं जिन्हें सच्चे द्रष्टा को अच्छी तरह देखना चाहिए और विचार कर उनसे उचित शिक्षा लेनी चाहिए । और हम अपने द्वेषी

के साथ, उसकी पिछली बड़ी बुराइयों को याद करके और अपने कसूरों को भूल कर, बड़ी बड़ी बुराइयाँ करना भी उचित समझ बैठते हैं । इस सम्बन्ध में ज़ौक़ की यह कविता भी याद रखने योग्य है:—

"तू भला है तो बुरा हो नहीं सकता अय ज़ौक़ ।
है बुरा वोही कि जो तुझको बुरा जानता है ।
और अगर तूही बुरा है तो वह सच कहता है ।
क्यों बुरा कहने से उसके तू बुरा मानता है"

परन्तु किसी मनुष्य को जो तुम से द्वेष रखता है या बुराई करता है और प्रेम भाव नहीं रखता दोष देना बड़ा अन्याय है, उस बेचारे का स्वभाव द्वेष का है यह उसका कसूर नहीं है; उसके मन का कसूर है, उसके मन को बदल दो, उसके मन में प्रेम पैदा करदो और फिर वह द्वेष करे और प्रेम न करे तो मैं ज़िम्मेदार हूँ । यहाँ मुझको याद आता है कि जब हमारे परिवार का कोई लड़का मेरे पास किसी दूसरे लड़के की शिकायत लेकर आता था तो मैं उससे प्रथम सन्ध्या स्कूल के संस्कारों को याद दिलाकर पूछा करता था कि "उसने तुम्हारे साथ बुराई की है तो तुमने उसके साथ भलाई की है या नहीं?" और उससे वह तुरन्त शरमिन्दा होकर अपना दोष स्वीकार कर लेता था । दूसरे मैं उससे कहता था कि उस लड़के ने जो बुराई की है उसका ज़िम्मेदार शिकायत करनेवाला लड़का है, क्योंकि उसने परम पिता-जी से प्रार्थना आदि करके उसको अच्छा लड़का नहीं बनवाया, और अब मैं दुनिया की सारी बुराईयों का ज़िम्मेदार अपने आपको समझता हूँ । यदि मैं ईश्वर की शरण में आकर खूब आनन्द अमृतपान करके संसार में सुन्दर प्रभाव फैला देता तो ये बुराईयाँ दूर हो जातीं । परन्तु जब इस विचार से मुझको क्लेश होता है, तो मैं तुरन्त ही पिताजी के चरणों में पहुँच कर उनकी "माशुच:" और "ओं भू:" सुनने लग

जाता हूँ और अपने मनोरथों की सिद्धि का निश्चय मुझको होने लग जाता है और मेरी राय में आपको भी ऐसा ही करना चाहिये। यदि हमने प्राणी मात्र में से द्वेष का भाव परित्याग कर दिया तो मानो हमने सारे संसार ही पर आधिपत्य कर लिया। तुलसीदास कहते हैं:—

तन कर मन कर वचन कर काहू दूषत नाहिं।
तुलसी ऐसे सन्त जन राम रूप जग माहिं॥

अर्थ—जो मन से, वचन से और कर्म्म से किसी में द्वेष भाव नहीं रखता, तुलसीदास कहते हैं कि संसार में ऐसे संत जन राम ही के रूप हैं। यदि हम आप भी राम बनना चाहते हैं तो हमें भी अपने हृदय से इस द्वेष भाव को समूल नाश कर देना चाहिए। प्रेम जो मन में पैदा हो जाता है तो मना करने पर भी मनुष्य प्यार किये जाता है। किसी माता को बच्चे को प्यार करने से मना करके देख लीजिये। हजरत मसीह ने उन लोगों के लिए जिन्होंने उनको सूली पर चढ़वाया था यह प्रार्थना की थी कि "पिताजी इनको क्षमा करो, ये अज्ञान से ऐसा करते हैं।" बहुत लोग चाहते हैं कि उनमें से द्वेष क्रोध आदि दूर हो जावें। एक महाशय कहा करते हैं कि मैं पांच सौ रुपये उस आदमी को दूँ जो मेरे क्रोध को दूर करदे। ये लोग अपने स्वभाव से लाचार हैं और दया के पात्र हैं। मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार तो पूर्वोक्त छोटी सन्ध्या से काम लेने से स्वभाव बदल जाना सम्भव है।

यदि कोई हमारा क़सूर करता है तो क्रोध द्वेष आदि मन में ला कर हम दुःखी क्यों बनें? यह तो वही बात हुई कि क़सूर करे वह और दुःख भोगें या सजा पावें हम।

विशेष करके जिस समय हमको किसी पुरुष से या किसी अन्य प्रकार किसी तरह का भी दुःख पहुँचे, उसी समय हम ईश्वर से अपने मनही मन में कहने लगें कि "पिताजी सब का भला हो, द्वेषियों का पहले

हो और मित्रों का पीछे और मेरा चाहे न हो और सब आप के भक्त बन जावें,, अर्थात् ईश्वर से मिलने, पूर्वोक्त प्रकार से ईश्वर से बातें करने से महान् लाभ और परमानन्द प्राप्त कर के दुःख के कारण मनुष्य को और दुःख को भी बाली के समान समझ कर सुग्रीव की तरह कहने लगें कि :—

बालि परम हित जासु प्रसादू। मिले राम तुम समन विषादू॥
ओह! जब कि दुःख से एक ओर तो पिछले पापों के बोझ से हम हलके होते हैं मानो पापों का पाप कटता है और दूसरी ओर हम परम सुख और परम लाभ के सागर में तुरन्त ही हिलोरें ले सकते हैं, तो क्यों हम दुःख भोगें और क्यों देश के पाप को सञ्चय करें। ओह! क्यों न हम उसकी शरण या गोद में पहुँच जावें कि जो हमको शरण ही नहीं किन्तु अपना सब कुछ देने को अकुला रहा है कि जिससे दुःख के और दुःख के कारण के लिए हमारे अन्दर सुग्रीव के समान द्वेष की जगह कृतज्ञता का भाव उत्पन्न हो सके।

एक और बात विचारने योग्य यह है कि यदि कोई आपके साथ पूर्वोक्त प्रकार आयु आदि के विचार से आपको अपना पिता, पुत्र या भ्राता समझ कर और विशेषतः आपकी ओर से द्वेष होने पर भी प्रेम का बर्ताव करे तो निश्चय ही आप उसके बहुत कृतज्ञ होंगे, इसमें जरा भी संदेह नहीं है। परन्तु यह कृतज्ञता बहुत अधिक होगी, यदि वह आप के पुत्र को पिता या पुत्र आदि की दृष्टि से देख कर द्वेष आदि की दशा में भी उसके साथ प्रेम का बर्ताव करे और यदि हम ईश्वर के बच्चों के साथ द्वेष आदि की दशा में भी इसी प्रकार बर्ताव करें तो हम उस को अपना बड़ा कृतज्ञ और ऋणी बना लेते हैं। ओह! यह एक कैसी ऊँची दशा है जिसका वास्तविक परिचय देने के लिए शब्द नहीं मिलते।

असल बात यह है कि पूर्वोक्त प्रकार ईश्वर के साथ बात करने या छोटी सन्ध्या आदि से हमारे अन्दर से द्वेष, अभिमान, आदि सब दोष दूर हो कर, प्रेम, नम्रता, क्षमा आदि अनेक गुण भर जावेंगे और दिमाग की कमजोरी, जिससे स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है दूर हो जायगी और हम धर्म के काम आप ही आप करने लगेंगे। हम आपही फिर्कों को शादी विवाह, खान, पान, आदि द्वारा मिलाने में आनन्द मानेंगे। बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि जैसा कि शायद मैं पहले सिद्ध कर सका हूँ, हम और आप ही यदि इस पर चलें तो हम आकाश को प्रेम आदि दैवी गुणों से भर सकते हैं और ये गुण आप ही आप औरों के अन्दर भरते चले जायँगे। अब और इस समय, हम और आप ईश्वर के आशीर्वाद के प्रभाव में प्लावित हो रहे हैं। इस समय हमारे अन्दर से अति उत्तम गुणों के भरे हुए परमाणु निकल रहे हैं और सारे संसार में परिवर्तन हो रहा है और हम जल्द ही देखेंगे कि लोगों के स्वभाव बदल गये हैं, उनके अन्दर से द्वेष निकल गया है, प्रेम भर गया है और वे स्वर्गीय आनन्द लूट रहे हैं और उसका सुन्दरता रूपी फल सारे संसार में फैला रहे हैं।

हिन्दी में शिक्षा।

हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा के विषय में तो मुझको कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है। इसका आदर तो बहुत कुछ होता जा रहा है। इस विषय में तो हम अपने आपको जितनी कुछ बधाइयाँ दें थोड़ी हैं। अँग्रेज़ी के साथ जो उर्दू फ़ारसी हमारे छात्रों की दूसरी जबान हुआ करती थी वह बहुत बंद हो गई है, और होती चली जाती है, और उसके बदले दूसरी जबान हिन्दी और संस्कृत होती जाती है और

आशा होती है कि शीघ्र बड़ी और पूरी उन्नति इस विषय में दीख पड़ेगी परन्तु इसके साथ हमको यह याद रखना उचित है कि हम द्वेष-भाव को हृदय में रख कर यत्न न करें किन्तु उदार-चित्त होकर इस बात को वही अपना धर्म या ईश्वर की आज्ञा समझ कर और संसार की सेवा के निमित्त करने के परम लाभ को उठावें। इस उदारता की और धर्मभाव की प्राप्ति का सुगम साधन भी वही पूर्वोक्त छोटी संध्या है कि जो बड़ी संध्या आदि की ओर हमको आपही खींच ले जायगी।

स्त्री-शिक्षा।

एक और बात जिस पर आपका ध्यान दिया जाना उचित है वह एक बहुत बड़ी और महत्त्व पूर्ण बात है। वास्तव में, यदि हम इसमें सफलता प्राप्त कर लेवें, तो हमारे सारे ही काम सिद्ध हो जावें। वह बात स्त्री-शिक्षा है, इसकी ओर पहले तो बड़े पक्ष पात के साथ देखा जाता था, परन्तु अनेक धन्यवाद हैं परमात्मा को कि अब तो सारे देश में इसकी उपयोगिता स्वीकार हो गई है और होती जा रही है। बहुत लोग यहां एक सोचने लगे हैं कि यदि उनकी पुत्रियाँ विद्या-हीन होंगी तो अच्छे घरों मे उनकी शादी न हो सकेगी। लोग सोचने लगे हैं कि अच्छे पुत्र उत्पन्न करने और जाति या राष्ट्र को बनाने, या जीविका रखने के लिए विदुषी माताओं की आवश्यकता है। इसमें सन्देह नहीं कि पूरा प्रबन्ध न होने से स्त्रियों का फजूल ख़र्च और मेम साहबों वाले स्वभाव वाली बन जाना सम्भव है। यह भी सम्भव है कि हिन्दू-जाति की स्त्रियों की जो सबसे बड़ी विशेषता पातिव्रत्य धर्म की है, उसको हानि पहुँचे। परन्तु इस भय से इस काम को ही न करना बहुत बड़ी हानि सर पर रखना है।

धन्य है परमात्मा को कि समस्त हिन्दू जाति के लोग यह सोचने लगे हैं कि फजूल खर्ची आदि के स्वभाव से बचे रहने का प्रबन्ध करते हुए स्त्रियों को ऊंचे दर्जे की शिक्षा का दिया जाना एक बड़ी आवश्यक बात है। जगह जगह कन्या-पाठशालाएँ जारी हो रही हैं और बहुत जारी हो जातीं, यदि अध्यापिकाएँ मिल सकतीं। इस सम्बन्ध में तो अब बड़ी चिन्ता यह है कि अध्यापिकाएँ कहाँ से आवें। देरादून में एक बहुत अच्छी कन्या-पाठशाला है और अध्यापिकाएँ न मिलने के कारण उसमें ईसाई अध्यापिकाएँ एक दो रखनी पड़ी हैं। इस समय हमको इस बात पर जोर देने की आवश्यकता कम है कि लड़कियाँ पढ़ाई जाँय क्योंकि लोग आप स्वयं इस काम को करना चाहते हैं। हमको यह प्रबन्ध करने की अधिक आवश्यकता है कि अध्यापिकाएँ तैयार की जावें।

जो कन्या-पाठशालाएँ अब हैं उनमें यदि कन्याएँ पढ़ कर तैयार भी होवें तो वे अपने घर बार के काम में लग जाती हैं और उनमें से बहुत थोड़ी ऐसी होती हैं जो अध्यापिका के काम के लिए मिल सकें। इस विषय में मेरी सम्मति जिससे मेरे बहुत से मित्रों ने अपनी पूरी सहमति प्रकट की है यह है कि श्री हरिद्वार, वृन्दावन, काशी, अमृत-सर जैसे कई स्थानों में इस प्रकार के विधवा-आश्रम बनाये जांय, कि जिनमें विधवाओं को अध्यापिका, उपदेशिका और प्रचारिका बनाने की शिक्षा दी जावे। इसका पहिला फल तो यह होगा कि बेचारी विध-वाओं की सहायता खान पान आदि की हो जावेगी और इसके अति-रिक्त उनकी आयु धर्म-कार्य्य ही में व्यतीत होगी, इतना ही नहीं किन्तु उनके जीवन पूर्णरूप से सफल हो जांयगे। दूसरे विधवाएँ शिक्षा पा कर अन्य काम में लगना कम पसन्द करेंगी, किन्तु अध्यापिकाओं के कार्य्य करने की हमारी अवश्यकता को पूरा कर सकेंगी। इस विषय में जहाँ

तक कि मुझे पता लगा है, कहीं कहीं कुछ विचार भी हो रहा है और वैश्य जाति को इस ओर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता है। परन्तु पूर्वोक्त छोटी सन्ध्या मनुष्यों को अपने कर्तव्य धर्मों की ओर अवश्य लगावेगी, और फ़ज़ूलख़र्ची आदि के स्वभाव का भय भी हमको इस दशा में नहीं हो सकता है।

कुरीति-सुधार।

अब मैं आपकी सेवा में एक और विषय की प्रार्थना करता हूँ कि जो वैसे तो सब के परन्तु अधिकतर हमारे मारवाड़ी भाइयों के विशेष ध्यान देने योग्य है। वह विषय यह है कि विवाह शादी आदि के शुभ अवसरों पर फुलवाड़ी लुटाना, बखेर करना, भूर बाँटना, खाली दिखावे के अनेक सामान करना, रंडियां का नाच कराना आदि इस प्रकार की जो बातें हैं वे बंद की जाँय। बहुत बार क्या प्रायः सर्वदा ही इस प्रकार के काम केवल नाम के लिए किये जाते हैं परन्तु ईश्वर की कृपा से अब संसार के विचारां में इतना परिवर्तन हो गया है कि इन कामों के होने पर अब कुछ थोड़ से ना-समझ लोगों को छोड़ कर ज्यादातर लोग और विशेष कर प्रतिष्ठित सज्जन इन कामों की निन्दा ही नहीं करते, किन्तु उनको बड़ी घृणा से देखते हैं। अखबारों में इन कामों के करने वालों की प्रशंसा आपने कभी नहीं पढ़ी होगी, जब पढ़ी होगी तो निन्दा ही। स्तुति उनकी पढ़ी होगी कि जो इन कामों को नहीं करते हैं, या जिन्होंने ऐसा करना छोड़ दिया है। कैसी सुन्दर बात है! पास का धन बचता है और मुफ्त में यश होता है। परन्तु बड़ी बात तो इसमें यह है कि इस प्रकार के कामों से, फजूलखर्ची होने से और निर्लज्जता और चरित्र बिगाड़ने वाली

बातें उत्पन्न होने से, बच्चों की गर्दन पर छुरी चलती है। जो रुपया उनके काम में आता, जिससे उनकी परवरिश और शिक्षा ऐसे प्रकार से हो सकती कि वे अपने जीवन में अपने माता पिता को धन्यवाद देते, जो रुपया न मालूम किस किस प्रकार झूंठ सच बोल कर पैदा किया जाता है, उसको यों फेंक देना वास्तव में बच्चों की गर्दन पर छुरी चलाना है, और आगे के वास्ते उन बेचारों के लिऐ बड़े खर्च का एक नियम अपने कुटम्ब में निश्चय कर देने से उनके लिए बड़े कष्ट का कारण बनना है। आज घर में रुपया है, कल को न जाने बच्चों की या आपकी ही क्या दशा हो। उन बेचारों को क़र्ज़ लेकर जायदाद बेंच कर अपने कुटम्ब का नाम और उसकी चाल चलाये रखने के लिए रुपया ख़र्च करना पड़ेगा और इससे दूसरों के लिए एक दु:ख का पैदा करने वाला नमूना सामने होता है। यदि किसी के पास रुपया है तो उसके खर्च करने के तो ऐसे ऐसे उपाय हैं कि जिनसे उपकार भी हो सकता है और नाम भी हो सकता है। यद्यपि नाम चाहना कोई प्रशंसा की बात नहीं पर भला करने वाले का नाम होता ही है। लोगों को चाहिये कि आगे को कुटुम्ब पर बोझ प्रतीत होने वाली कोई चाल न चलावें। ऋषिकुल, गुरुकुल, आचार्य्यकुल, साधु-उपदेशक-पाठशालाएँ विद्यालय, कन्यापाठ-शालाएँ, विधवा आश्रम, विधवा पाठशालाएँ स्थापित करना, छात्रों, छात्राओं, वैश्य विधवाओं को वृत्तियाँ देना, शिल्प-विद्यालय खोलना इत्यादि अनेक ऐसे ऐसे काम अति आवश्यक हैं कि उनमें रुपया ख़र्च करने से बड़ा उपकार हो सकता है, और बच्चों के आचरणों पर इसका कोई हानिकारक प्रभाव पड़ने के बदले उनपर बहुत उत्तम प्रभाव पड़ना सम्भव है।

इसके साथ विवाह शादियों में लड़कों और लड़कियों पर रुपया

लिया दिया जाना, बुढ़ापे में छोटी लड़कियों के साथ शादी होना, एक औरत के होते हुए दूसरी शादी करना, मृत्यु के समय बड़ी बड़ी दावतें, भूर, बखेर और बड़े बड़े स्यापे आदि का होना, बच्चों को ज़ेवर पहिनाया जाना इत्यादि ऐसी बातें हैं कि जो बन्द होने और घृणा की दृष्टि से देखे जाने योग्य हैं।

परन्तु इस विषय में जो बड़ी बात विचार के योग्य है, वह यह है, कि विवाह और मृत्यु कोई खेल तमाशा नहीं है, किन्तु ऐसे गौरवपूर्ण और अनोखे अवसर हैं कि जहाँ लोग वाहियात बातें करके अपने और अपने बच्चों के और अन्य लोगों के लिए इस लोक और परलोक के दुःख के सामान उत्पन्न करते हैं। वहाँ शास्त्रोक्त रीति से चलने से इन अवसरों पर महान् और निश्चित लाभ उठाया जा सकता है और उनके करते समय और शेष जीवन में और परलोक में अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। ऐसे आनन्द की प्राप्ति नाच और अपवित्र और फ़ज़ूल बातों को करने वालों को स्वप्न में भी नहीं हो सकती और बच्चों का और अन्य पुरुषों का भी बड़ा भला हो सकता है। अलग अलग वस्तुओं का अलग अलग उद्देश्य होता है। विवाह-संस्कार एक पवित्र संस्कार है और इसका प्रधान उद्देश्य सन्तान उत्पादन करना है। ऐसे संस्कार को अवश्यमेव इस प्रकार से करना उचित है कि वर और कन्या को सुन्दर सन्तान उत्पन्न करने और गृहधर्म-सम्बन्धी बातों की जिम्मेदारी का पूरी तरह अनुभव होने लगे और इस सम्बन्ध पर ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त हो सके कि जिससे सन्तान जो उत्पन्न हो, तो कुल को कलंक लगाने वाली न हो, आप दुःख पाने वाली और संसार में दुःख फैलाने वाली न हो, किन्तु कुल के नाम को प्रकाश करनेवाली, आप सुखी रहने वाली और संसार को

सुख पहुँचाने वाली हो, अर्थात् ईश्वर की भक्त हो। ऐसे समय में, जैसा कि ऊपर प्रकट किया गया है, भले प्रकार महान् आनन्द और लाभ का देने वाला ईश्वर का स्मरण किया जाना चाहिये, कि जिससे अपना और सबका भला हो। और सन्तान भी अति उत्तम उत्पन्न हो और जो सच्चा विवाह होता है उसमें वेदपाठ, अग्निहोत्र आदि और ईश्वरोपासना होती ही है।

लोग कभी कभी कहा करते हैं कि बिना नाच वग़ैरह के शादियों में आनन्द या रस नहीं आता, पर हमने कई विवाह-संस्कार ऐसे देखे हैं जिनमें सब बातें शास्त्रीय विधि से और शुद्ध धार्म्मिक भाव से हुई हैं। जो पवित्र आनन्द उनमें आया है उनका अनुभव स्वप्न में भी नाच आदि कराने वालों को नहीं हो सकता। अमृत की वर्षा इन विवाहों में होती प्रतीत हुई है। सुन्दर भजनों का गाया जाना, सुन्दर व्याख्यानों का देना और सुन्दर विचारों का प्रकट होना ऐसे २ काम विवाहों में देखे गये हैं कि उनके स्मरणमात्र से अब भी स्वर्ग का आनन्द हृदय में व्याप्त हो जाता है। परन्तु आनन्द न भी आवे तो रात को तो सो रहा करो और दो दिन जो विवाह के होते हैं उनको बिना आनन्द के ही व्यतीत कर दो। परन्तु महापाप, महा दु:ख और महा क्लेश से तो बच्चों को बचाओ। इस बचाने का विचार ही बहुत बड़ा आनन्द उत्पन्न कर देगा।

उधर मृत्यु जैसे कठिन अवसर पर अपने प्रिय मृतक की मुक्ति के अर्थ ईश्वर का वही दु:ख-शोक-हरण और महान् आनन्द और लाभदायक स्मरण करना उचित है। कैसे गम्भीर और लाभ उठाने योग्य अवसरों पर, कैसी वाहियात और हानिकारक बातें होती हैं! इसका विचार वास्तव में बड़ा दु:खदायी है। किन्तु किसी कवि ने कहा है:—

"सर पर पड़ी तो क्या है सर पर पिता तो है :—
मुशकिल अड़ी तो क्या है मुशकिल कुशा तो है।"

हम अपने मुशकिल कुशा पिता की सेवा में इस समय अपने आप को समझने का, उसका आशीर्वाद मिलने का, वह मधुर अर्थात् "प्रसन्न हो जाओ, चिन्ता की कोई ज़रूरत नहीं" "माशुचः" सुनने का अधिकार रखते हैं। वह हम को इस समय निश्चय करा रहा है कि पवित्र और अति बलवान् लहरें फैल रही हैं, अब जल्द लोगों की बुद्धियाँ बदलेंगी और हमारी इच्छाएँ पूर्ण होंगी। हम अपना कर्तव्य दृढ़ता और विश्वासपूर्व्वक पालन किये जाँय, और उनको वह पिता अवश्यमेव सफल करेगा, और न केवल विवाह आदि किन्तु हर प्रकार के सम्बन्ध में हमारा सच्चा सुख और कल्याण होगा।

दानप्रणाली।

अब मैं आपका ध्यान दानप्रणाली की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। हमारा देश, हमारे हिन्दू भाई और हमारी वैश्य जाति दान के लिए प्रसिद्ध है। किसी और देश में इतना दान नहीं होता होगा जितना हमारे देश में और हमारे देश के किन्हीं लोगों में हिन्दुओं से ज्यादा और शायद किसी जाति में वैश्य जाति से बढ़ कर दान नहीं होता होगा। परन्तु इस दान का शतांश भी यदि शास्त्रोक्त रीति से किया जाय तो देश की दशा में एक बहुत ही सुन्दर और बड़ा परिवर्तन हो जाय। बहुत सी दशाओं में तो दान इस प्रकार होता है कि उससे बड़ी हानि होती है और उस दान से दान का न होना हज़ार दर्जे अच्छा है। शास्त्रों में लिखा है कि—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्॥
भ० गी० अ० १७-२०

अर्थात् जो दान देश, काल और पात्र को देख कर (निष्काम भाव से) ऐसे पुरुष को दिया जावे जिसने अपने साथ कुछ भी उपकार न किया हो वही सात्विक दान है। इस सम्बन्ध में कई बातें विचारने योग्य हैं। उनमें से एक यह है कि जो धन किसी मनुष्य के पास है वह ईश्वर की अमानत है, उसका उसे पैसे २ का हिसाब देना होगा। साथ ही उसका वह ईश्वर की ओर से मानो ख़ज़ांची है। यदि ख़ज़ांची धनी की अमानत को ख़र्च करने की जगह तो ख़र्च करे नहीं और जहाँ ख़र्च न करना हो वहाँ ख़र्च कर दे तो उसकी ख़ज़ांची की जगह छिन जायगी। इसी प्रकार यदि कोई धनवान् मनुष्य धन को ऐसे प्रकार ख़र्च करे कि जो ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध हो; और ऐसी जगह ख़र्च न करे जहाँ ईश्वर की आज्ञा हो, तो क्या फिर भी वह ख़ज़ांची बनाया जा सकेगा? आगे को और इस जन्म में भी फिर भी धनवान् बनने के लिए यह आवश्यक है कि इस समय धन को यथार्थ रीति से व्यय करें। कुपात्र आदि को दान देकर और यथाशक्ति उचित प्रकार सुपात्र आदि को दान न दे कर कोई मनुष्य आगे को धनवान् बनने की आशा कदापि न करे। कुपात्रों को दान देने में महापाप की एक बात यह भी है कि सुपात्रों का अधिकार मारा जाता है। आज कल ऐसे सदावर्तों आदि ने कि जिनमें पात्र कुपात्र को देखे बिना अन्नादि दिया जाता है ५२,००,००,० आदमियों को साधू बना दिया है। भला क्या ये सब सच्चे साधु हैं? बावन लाख तो क्या बावन हज़ार या बावन सौ भी इनमें सच्चे साधू नहीं हैं और इसी प्रकार के दान आदि ने बहुत से तीर्थों के पंडो और अन्य ब्राह्मणों

को विद्याहीन और तीन करोड़ भारतवासियों को भिखारी बना दिया है। क्या ये सब सच्चे ब्राह्मण हैं ?

ईश्वर न करे कि मैं अपने पूजनीय साधुओं और ब्राह्मणों की निन्दा करूँ कि जिनमें बड़े बड़े महापुरुष, सच्चे महात्मा, साधू और ब्राह्मण हैं जिनका जीवन अत्यन्त परोपकार का जीवन है ; जिनसे मैंने भी बहुत लाभ प्राप्त किया है कि जिसके लिए मैं उनका परम कृतज्ञ हूँ और जो अपने सदुपदेशों और अमृतवाणी और अपने पवित्र आदर्श से संसार को बड़ा लाभ पहुँचा रहे हैं। साधु नाम के अधिकारी यही महापुरुष हैं और गृहस्थ लोग जिम्मेदार हैं कि इनकी आवश्यकताएँ पूरी करें ; उनको अन्न, वस्त्र आदि का दान देना, उन पर कोई अहसान करना नहीं है, उनका एक एक उपदेश बड़ा अमूल्य होता है ; और उनको लाखों रुपया भी उसके बदले में दिया जावे तो हमारे ही ज़िम्मे उनका अहसान बाकी रहता है। उनके ऊपर हमारा अहसान नहीं होता है। ऐसे साधुओं को दान देना अपने आपको कृतार्थ करना है और उनको यथोचित दान न देना पाप है। इसी शैली में दान के पात्र ब्राह्मणों को भी समझ लीजिये। परन्तु लाखों आदमी ऐसे हैं कि जो आजीविका के लिए परिश्रम न करने के कारण या और किसी ऐसे ही कारणों से अधेले की गेरू में कपड़े रंग कर साधू बन गये।

मुफ्त की रोटियाँ खाने को और कपड़े पहनने को मिलें; लोग बड़ा आदर सत्कार करें; कुछ करने धरने की फिक्र नहीं; जहाँ चाहें वहाँ सैर करते फिरें; तो जब कि गृहस्थ लोग अपनी रोटी कमाने में इतना बड़ा कष्ट उठाते हैं और फिर भी बहुत बार उनको पेट भर रोटी नहीं मिलती है तो आश्चर्य तो यही है कि बावन लाख की जगह कई करोड़ आदमी साधू क्यों नहीं बन गए ? यहाँ यह भी याद रखने की

बात है कि भारतवर्ष में बावन लाख तो साधू ही साधू हैं। इनके अतिरिक्त, बेचारे गृहस्थियों की कमाई को माँग कर खाना ही जिनका पेशा है ऐसे कई करोड़ और भी ब्राह्मण भाट आदि हैं। इन सब में से मोटा हिसाब लगाने पर हम पचास लाख से ऊपर के आदमियों को तो सच्चे साधू और ब्राह्मण अर्थात् दान के पात्र समझ लें और शेष साधू ब्राह्मण आदि नाम रखा दूसरों के सिर खाने वालों को पचास लाख ही करार दें तो सोचने की बात है कि कितना रुपया देश का साल भर में ये लोग खा जाते हैं। यदि इन लोगों के खाने, कपड़े, कुटिया, यात्रा आदि सब का हिसाब लगा कर कम से कम एक एक का ५) रुपया मासिक या ६०) सालाना भी ख़र्च समझा जावे तो तीस करोड़ रुपया साल बैठता है कि जो कोई छोटी रक़म नहीं है। एक आदमी कहा करता है कि यदि दैवगति से ये पचास लाख आदमी मर जावें तो तीस करोड़ रुपये साल की बचत तो एक हो जावे; और जो अन्न ये लोग खाते हैं उसकी बचत होने से अन्न सस्ता होने के कारण ग़रीब गृहस्थियों को कुछ सुभीता हो जाय। परन्तु यह भारतमाता के और हमारे परम-पिता परमात्मा के प्यारे पुत्र ये हमारे प्यारे मर क्यों जावें? क्यों न यह माँगना छोड़ कर समाज के उपयोगी मेम्बर बन जावें? यदि ये लोग माँग कर खाना छोड़ दें और मरें नहीं, किन्तु जीते रह कर काम करें, तो अपने आप चाहे उनकी कमाई की औसत साठ रुपये साल से अधिक न हो किन्तु जो काम यह करें उसके दाम दो सौ रुपया सालाना फी आदमी करार दिये जावें तो बहुत नहीं और उससे एक अरब रुपये का लाभ प्रति वर्ष देश को पहुँचे। इसमें से तीस करोड़ रुपया इनके ख़र्च का काट कर सत्तर करोड़ का लाभ प्रतिवर्ष देश को इनसे पहुँचे। इस इतने बड़े लाभ को रोकने और इस ऐसी बड़ी

हानि को पहुँचने के जिम्मेदार कौन हैं ? क्या वे लोग नहीं जो पात्र अपात्र का विचार किये बिना सदावर्तों आदि में अन्न-वस्त्र आदि का दान करते हैं ? यदि पात्रों को ही दान मिला करे तो फिर ये पचास लाख आदमी साधू क्यों हों ? ये भी कमा कर खाया करें और देश को सत्तर करोड़ रुपया प्रतिवर्ष और इसके अतिरिक्त व्याज का लाभ पहुँचा करे। इतना बड़ा लाभ तो केवल दान के बन्द होने से हो जाया करे और यदि यह दान या उसका कोई उचित अंश और इसके अतिरिक्त उस दान का भी उचित अंश कि जो और भी हमारे देश में होता है यदि यह शास्त्रोक्त धर्म्मकार्य्यों में लगाया जावे तो क्या भारतवर्ष ऐसी ही दशा में दीख पड़े जैसा कि अब है ? ओह ! कितना बड़ा लाभ देश को पहुँचना सम्भव है ! चाहे जितने ऋषिकुल, आचार्य्यकुल और विश्वविद्यालय; चाहे जितने विशुद्धानन्द महाविद्यालय, चाहे जितनी यूनीवर्सिटियाँ, चाहे जितने विधवा-आश्रम, कन्या पाठशालायें, अनाथालय, गोशालाएँ आदि स्थापित कर लो; और चाहे जितने गरीब लोगों की तकलीफ दूर करने के सामान करलो ! एक शंका जो लोग किया करते हैं यहाँ पर उसके विषय में कुछ निवेदन करना उचित प्रतीत होता है। लोग कहा करते हैं कि भूखा चाहे कोई हो, उसको अन्न देना उचित ही है। मैं कहूँगा "अवश्यमेव" परन्तु उसका मतलब यह है कि यदि कोई मनुष्य कभी अकस्मात् भूखा आ जावे तो उसको अन्न अवश्य दिया जावे, चाहे वह कोई हो। परन्तु जो माँग माँग कर खाना ही अपनी आजीविका का निमित्त बनाले और और प्रकार से दान का पात्र न हो तो उसको रोज रोज अन्न देना उचित नहीं है। इससे उसका जीवन निकम्मा हो जाता है और देश को हानि होती है और दूसरों का हक उसको मिलना भी पाप ही की बात है।

मित्रो ! यूरप, अमेरिका आदि का तो मैं क्या आपके सामने वर्णन करूँ, आप अपने ही देश में देख लीजिये। हमारे मुसलमान भाई कितने हैं और धन हिन्दुओं की अपेक्षा उनके पास बहुत कम है, परन्तु उन के कितने कालिज और पाठशालाएँ बनी हुई हैं, आर्य्यसमाजियों को देख लीजिये वे भी इतने थोड़े और उनके पास धन भी बहुत कम है, परन्तु उनके कितने गुरुकुल और पाठशालायें और कालिज़ हैं।

इधर सनातनधर्मियों की ओर दृष्टि डालिये। उनकी बहुत सी ऐसी संस्कृत-पाठशालाएं हैं कि जिनसे पूर्व काल में तो बड़ा उपकार होता था क्योंकि जिस प्रकार की शिक्षा उनमें होती है उसकी पूछ और आवश्यकता उस समय थी। परन्तु आजकल तो उन में पढ़ कर बेचारे विद्यार्थी किसी योग्य भी नहीं रह जाते। परन्तु इनके अतिरिक्त हिन्दुओं के और कितने कालिज़ और पाठशालायें हैं ! और फिर उनमें मुसलमानों के अलीगढ़ कालिज और आर्य्यसमाजियों के काँगड़ी गुरुकुल और लाहोर के डी० ए० बी० कालिज के मुकाबले का तो हम नाम भी नहीं ले सकते हैं। क्या हमारा हरिद्वार का ऋषिकुल और बनारस का हिन्दू सेन्ट्रल कालिज और कलकत्ते का विशुद्धानन्द महाविद्यालय और इनसे कम हैसियत के और दो चार स्कूल या कालिज या ऋषिकुल इतनी बड़ी हिन्दू जाति को ऊपर उठाने और शिक्षा देने के लिए काफ़ी हैं ? और इतने ही पर हम गौरव का अभिमान कर बैठें और औरों की निन्दा करने लगें ? करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष महाजनों के यहाँ धर्मखाते का निकलता है। करोड़ों रुपया सालाना और भी दान होता है और उस पर जाति की और देश की दशा यही ~~बनी है।~~ बहुत सा रुपया तो दान का स्वार्थ-साधन के लिए, कभी कभी द्वेष-पालनार्थ भी जप, पाठ, अनुष्ठानादि में ख़र्च होता है; और उपकार के कामों में बहुत ही कम ख़र्च होता है। न हुआ ऐसा और इतना रुपया

आर्य्यसमाजियों आदि के हाथ में । आप देखते कि पृथ्वी को आसमान से ऊँचा उठा देते । सनातनधर्म्मियों पर यह भारी कलंक है कि इतना दान होने पर भी वास्तविक उपकार कुछ नहीं होता और इस कलंक का शीघ्रतर दूर होना परम आवश्यक है । फिर हमारी वैश्य जाति ही में जो काम जैसे अनाथालय मेरठ और विधवाआश्रम मेरठ, नाइट स्कूल मेरठ, बोर्डिंग हाउस आगरा और और कई एक काम महान् उपकार के हो रहे हैं और और इसी प्रकार के सैकड़ों और होने की आवश्यकता है जिनमें से इँगलैंड, अमेरिका आदि में वैष्णव धर्म्म के आश्रम हिन्दुओं के नहीं तो वैश्यों के लिए स्थापित करना एक है। फिर जब कि और जातियाँ मुसलिम लीग आदि की तरह अपना काम कर रही हैं तब हिन्दू सभा को स्थापन और दृढ़ करना आवश्यक है । क्या इन सब का पेट भर चुका है ? क्या इनकी रात दिन की पुकार रुपये की आवश्यकता के विषय में बन्द हो गई है, जो हमारा दान ऐसी बेपरवाही के साथ हो कि उससे हानि पहुँचे और दान करने वालों को पाप हो ? मेरे एक मारवाड़ी मित्र ने एक बार मुझ को सुनाया, कि मारवाड़ में एक स्थान है जहाँ के रहने वालों को पानी बिना बहुत तंगी थी । एक सेठ ने वहाँ एक बावड़ी बनवाई जिससे लोगों को बहुत ही बड़ा सुख पहुँचा और उस सेठ का बड़ा नाम हो गया । इस पर एक दूसरे सेठ ने दूसरी वैसी ही बावड़ी बनवा दी । इससे भी सुख पहुँचा और उस दूसरे सेठ का भी नाम हो गया । इसके पश्चात् एक तीसरे ने, फिर एक चौथे ने और फिर पाँचवें ने और छठे ने नाम के लिए धर्म्मखाते का या ईश्वर के बखरे का रुपया खर्च कर के कूए बनवा दिये । परिणाम यह हुआ कि आबादी थोड़ी थी । कुओं में से पानी का निकास काफ़ी नहीं हुआ, पानी सब कूओं का सड़ने लगा और लोगों का आराम जाता रहा । बतलाइये तो सही, यह इन फालतू

कुएं बनाने वालों को पुण्य हुआ या पाप ? क्या मारवाड़ में कोई और जगह ऐसी बाकी नहीं रही कि जहाँ इसके बदले अलग अलग कुएँ ये लोग बनवा देते ? बहुत लोगों के यहाँ धर्म्मखाते में या ठाकुरजी के बखरे के खाते में जो फ़ायदे में से प्रतिवर्ष रुपया जमा होता है उसको ऐसी बेपरवाही से ख़र्च किया जाता है कि उसका बिलकुल भी दर्द उनके दिल में नहीं होता है। अपना एक पैसा यदि बेज़ा खर्च हो जावे तो उसका तो उनको दुःख होता है परन्तु धर्म्म के या ठाकुरजी के रुपये की बाबत उनको कुछ परवाह नहीं होती है। क्या यह ज़िम्मेदारी की बात नहीं है ? क्या उनको इसका हिसाब नहीं देना पड़ेगा ? अपने पैसे से ज्यादा धर्म्म के और ठाकुरजी के रुपये की परवाह और ख़बरदारी होनी चाहिये। मेरी राय में एक महती सभा कुल भारतवर्ष के सनातन धर्म्मियों की स्थापित होनी चाहिये कि जिसका प्रधान कार्य्यालय कलकत्ते में हो और जो प्रत्येक सनातनधर्मी परिवार शास्त्रों की शिक्षानुसार लाभ का दशमांश जैसा कि बहुत से ईसाई तक भी निकालते हैं उस लाभ के देनेवाले ईश्वर के निमित्त निकाला करें और उसको शास्त्रोक्त रीति से ख़र्च करने के लिए प्रयत्न किया करें। इस दशमांश का कुछ भाग इस सभा द्वारा भी ऋषिकुलों, आचार्य्य-कुलों, अनाथालयों, विधवापाठ-शालाओं आदि की स्थापना और सहायता आदि में कि जहाँ सनातन-धर्म्म की शिक्षा के साथ और भी उपयोगी शिक्षा दी जावे और विला-यत आदि में हिन्दू यात्रियों और छात्रों आदि के धर्म्म के रक्षार्थ धर्म्मशालायें आदि बनाने में ख़र्च हुआ करे।

मित्रवर ! यहाँ इस पर भी हमको ध्यान देना उचित है कि नफ़ा ईश्वर का दिया हुआ होता है और यदि ईश्वर हमको दस रुपये देकर एक रुपया वापस माँगे तो हाय हाय ! क्या हमको उसमें संकोच होना

चाहिये ? विशेषत: जब कि वह रुपया ऐसे सुन्दर कामों में और प्राय: हमारे ही बाल बच्चों आदि के उपकार में ख़र्च हो ? संकोच की दशा में आगे को लाभ की आशा रखने का आपको कोई अधिकार नहीं रहता और प्रेमपूर्वक दशमांश दे देने में बड़े भारी अशीर्वाद के हम अधिकारी समझे जाते हैं। ऐसी सभा के होने से लोग प्राय: आर्य्य-समाज की ओर आकर्षित भी कम होंगे और हमारे प्यारे आर्य्य-समाजी भी इसको अपना काम समझ कर प्रसन्न होंगे बल्कि हमारी सहायता करेंगे।

दान के विषय में मेरी राय यह भी है कि दान वित्त समान और श्रद्धा, प्रेम और प्रसन्नतापूर्व्वक और स्वार्थरहित होकर निष्काम भाव से करना चाहिये। कोई २ पुरुष स्वार्थवश होकर नाम के लिए या अपने कुटुम्ब की चाल के कारण या परलोक आदि के सुख के लिए दान करते हैं और कभी कभी वित्त से बाहर दान करते हैं। यह सब पाप है। जो रुपया वे इस प्रकार दान करते हैं वह उनका नहीं है उसमें उनके बाल-बच्चों आदि का भी हक़ है और अपने बाल-बच्चों का हक़ इस प्रकार लुटाना उनका गला काटना है कि जो महा-पाप है।

इसमें सन्देह नहीं है कि हमारे देश की दान की वर्तमान दशा बहुत शोचनीय है और उसका सुधार होना उचित है। परन्तु साधारण बातें जिनकी ओर लोग ध्यान दिया करते हैं वे बहुत छोटी हैं। वर्ण-व्यवस्था जो शास्त्रों में बतलाई गई है उससे चारों वर्णों के काम इस प्रकार बाँट दिये गये हैं कि जिससे सबको सुख मिले। इस वर्ण-व्यवस्था के धर्म्मों पर विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि केवल साधु संन्यासियों का ही जीवन परोपकार के लिए नहीं है किन्तु गृहस्था-श्रम के एक एक व्यक्ति का जीवन अपने लिए नहीं किन्तु समाज के

हित के लिए प्रत्येक मनुष्य के जीवन का महान् उद्देश रक्खा गया है। जहाँ ब्राह्मण का धर्म्म विद्या और ज्ञान देना, क्षत्रिय का धर्म्म प्रजा-पालन और देश की रक्षा, शूद्र का धर्म्म अपने तन से सेवा करना बतलाया गया है कि जो वास्तव में परोपकार के कार्य हैं, वहाँ बेचारे वैश्य को एक कठिन धर्म्म बतलाया गया है अर्थात् धन आदि संचय करना। इसमें लोभ से मनको बचाना एक कठिन काम है। वैश्य का धर्म्म, धन आदि संचय कर के तीनों वर्णों के अच्छी तरह निर्वाह का प्रबंध करना है। जो धन एक वैश्य कमाता है वह उसका नहीं है किन्तु उसके और औरों के निर्वाह के लिए है। यह संसार एक कुटुम्ब माना गया है। एक परिवार में किसी का काम घर की रक्षा करना, किसी स्त्री आदि का काम भोजन आदि बनाना है और किसी का काम धन कमाना है। परन्तु जो धन कमाने वाला कमाई करता है वह केवल उसकी नहीं है किन्तु सारे परिवार की है और परिवार में जिस २ के लिए जो जो आवश्यकता होती है वह उस धन से पूरी होती है परन्तु क्या इस प्रकार आवश्यकता पूरी करने में धन कमाने वाले का कोई अहसान है? नहीं। वह बड़े प्रेम के साथ उन आवश्यकताओं को पूरी करता है और बड़ा आनन्द मानता है। इसी प्रकार संसार रूपी परिवार में वैश्य का काम यदि धन कमाने का है तो जो धन वह कमाता है वह उसका नहीं है; किन्तु सारे परिवार का है। जहाँ२ आवश्यकता हो वहाँ वहाँ प्रेमपूर्व्वक और आनन्दित होकर वह ख़र्च होना चाहिये। पुण्य का और अहसान का विचार करना बहुत छोटी, बात है। आप सोचते हैं कि जिनको आप दान देते हैं वे कौन हैं? जैसा कि मैं पहले कह आया हूँ, याद रहे कि "नूरे नज़र हैं वे भी किसी ताज़दार के"। वे ईश्वर के पुत्र हैं कि जिसका एक प्रकार से तुम्हारे ऊपर इतना बड़ा अहसान है कि यदि उसके बच्चों को

कुछ तुमने दे दिया तो तुमने कुछ भी बदला नहीं उतारा। फिर यह भी याद रहे कि ये बच्चे हैं कि जिनके अन्दर से निकली हुई लहरें या किरणें प्रतिक्षण पूर्वोक्त प्रकार तुमको और तुम्हारे परिवार को निहाल कर रही हैं। अरे! अपने अहोभाग्य समझो कि ऐसे ईश्वर से भी बड़ों की सेवा करने का तुमको अवसर मिलता है। सच्चे प्रेम और आनन्द से उन्हें दो, खूब कमाओ और खूब दो। तुम्हारा काम है कमाना और उनकी सेवा करना। किसकी सेवा करना? क्या मैंने यह कहा है कि ईश्वर के बच्चे हैं? हाँ ख़ैर यह भी समझ लो बल्कि इसके साथ बिना संकोच और ज़रूर यह भी समझो कि तुम उनकी सेवा करने में अपने प्यारे पिता ईश्वर को प्रसन्न कर रहे हो। इसमें सन्देह नहीं हो सकता है कि कोई आदमी अपनी सेवा के होने पर इतना प्रसन्न नहीं होता जितना अपने बच्चों की सेवा होने पर होता है। परन्तु यह बात भी अधिक आनन्द की देने वाली और जो आनन्द का फल है उसको प्राप्त कराने वाली नहीं है। जब कभी किसी की सेवा तन मन धन से करो तो तुमको बहुत ज्यादा आनन्द मिलेगा और ईश्वर भी इससे बहुत प्रसन्न होगा। यदि आप बड़ों को माता, पिता, बराबर वालों को भाई-बहिन और छोटों को बेटा-बेटी समझ कर प्रेमपूर्व्वक सेवा किया करें और ऐसी रीति से उनको लाभ आदि पहुँचावें कि जिससे उनको आप के अहसान का बोझ तक न प्रतीत हो (बाबा कृष्णानन्द का लेख) तो इसका बड़ा उत्तम फल होगा। यह भी मैं कुछ कुछ अपने अनुभव की बात कह रहा हूँ। मुझको कितना बड़ा आनन्द आता है कि जब कभी मैं किसी की कोई सेवा उक्त प्रकार की यह समझ कर करता हूँ कि आयु के विचार से यह मेरा पिता या माता या भाई या बहिन या बेटा या बेटी है। उससे मानो हृदयाकाश में से भी एक

आकाशवाणी होती है और पूर्वोक्त प्रकार से ईश्वर कहता हुआ प्रतीत होता है कि "मैं धन्य हूँ कि मेरे ऐसे पुत्र हैं कि ऐसा भाव जिनके मन में है"। हाँ मित्रो, हमारे शास्त्रों में निष्काम ही कर्म्मों का माहात्म्य लिखा है। कामना से जो काम किये जावें चाहे वे दुनिया के नज़दीक अच्छे भी हों और चाहे उनसे उपकार भी दूसरों का हो जावे परन्तु दूरदृष्टि से देखने पर वे पाप ही प्रतीत होंगे; जैसे कि एक चोर कामनावश चोरी करता है, डाकू डाका मारता है, वैसे ही कामनावश एक दूकानदार दूकान करता है, एक आदमी कामनावश झूठ बोलता है, एक सच बोलता है, एक दान देता है, एक दान लेता है, एक दान नहीं देता है और एक साधू अपनी मुक्ति के लालच में आया हुआ माला फेरता है।

संकल्प।

हमारे सनातनधर्म में एक कैसा पवित्र नियम है कि जब कोई सनातनधर्म्मी कोई काम करता है तो वह पहले संकल्प पढ़ता है। संकल्प की विधि के अनुसार प्रथम तो सृष्टि की आयु-सम्बन्धी और वर्तमान संवत्सर, मास, तिथि, नक्षत्रादि और स्थान का स्मरण किया जाता है और इन सबको शुभ कहा जाता है जैसे "अमुक शुभस्थाने" "अमुक शुभ तिथौ" इत्यादि। और पूर्वोक्त विचारानुसार सारे ही स्थान और समय शुभ हैं, परन्तु जिस समय और जिस स्थान में ईश्वर का एक लाड़ला राजकुमार किसी काम को शुभ संकल्पों के साथ करना चाहता है, उसको कौन शुभ न कहेगा? विश्वासियों के कैसे सुन्दर वचन इस विषय में हैं कि जिनमें से दो मैंने मङ्गलाचरण में भी कहे हैं अर्थात्

"तदेवलग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं सर्वबलं तदेव लक्ष्मीपतेर्य हि युगं स्मरामि" ॥१॥

और एक और है और वह भी यहाँ पढ़ा जाना उचित है अर्थात् :—

"तत्रैव गंगा यमुना च वेणी गोदावरी सिन्धु सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसंति तत्र यत्राच्युतोदार कथाप्रसंग:" ॥ १ ॥

" آسماں سجدہ کند روے زمیں را کہ برو
یک دو کس یک دو نفس بہر خدا بنشینند "

इस प्रकार स्थान और संवत्सरादि के स्मरण से चित्त में बड़े उच्च-भाव उत्पन्न होते हैं, इसके पश्चात् संकल्प पढ़ने वाला अपने हृदय में यह विचार कर लेता है कि मैं इस काम को किस अभिप्राय के साथ करता हूँ। हमारा स्नान, ध्यान, पूजा, पाठ, दान, पुण्य आदि ही नहीं किन्तु हमारे सारे ही काम, छोटे से छोटे और बड़े से बड़े, हमारा लेन, देन, कार, व्यवहार, खेती, दूकान आदि सब काम; हमारा खाना, पीना, सोना, जागना शौच आदि यहाँ तक कि हमारा साँस लेना तक जिस अभिप्राय को लेकर होना चाहिए उसको कैसी सुन्दरता के साथ एक श्लोक में वर्णन किया है कि जिसको प्रातः स्मरण कहते हैं। वह श्लोक यह है :—

"लोकेश चैतन्य मयाधिदेव
मांगल्य विष्णो भवदाज्ञयैव।
हिताय लोकस्य तव प्रियार्थं
संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये" ॥ १ ॥

अर्थात्—प्रातः काल में हम प्रेमभाव में मग्न हुए एक ऐसा दृश्य उपस्थित करें कि हम जो ईश्वर के बच्चे हैं उस अपने पिता के सम्मुख खुशामद से नहीं किन्तु प्रेम और आनन्द से गद्गद होकर पिताजी के गुणों का आदर करते हुए अति उत्तम प्रशंसा के मधुर शब्दों द्वारा अपने जीवन के महान्, और अत्यन्त उत्तम उद्देश को प्रकट करते हुए दिखाई दें अर्थात् हम ईश्वर से कहते हुए प्रतीत हों कि "हे संसार के स्वामी, चैतन्यमय, हे मङ्गलस्वरूप, हमारे सर्वव्यापक पिताजी! हम किसी और उद्देश्य से नहीं किन्तु केवल इसलिए कि यह आपकी आज्ञा है और संसार के हित के लिए और आपकी प्रसन्नता के लिए अपनी संसार का यात्रा अनुवर्तन करते हैं अर्थात् अपने नित्य के कामों को इन उद्देश्यों को लेकर करते हैं।"

कैसा आनन्द तो ऐसे शब्द, अपने पिता या माता से कहने में, हमको अनुभव होना सम्भव है! और कैसा आनन्द इस विश्वास में होना संभव है कि वह परम प्रेमी परमात्मा, हमारा प्यारा, अपने बच्चों या प्रेमियों के मुख से ऐसी प्रशंसा के शब्द, और ऐसे प्रेम और पवित्र भाव और संकल्पों को प्रकट करने वाले शब्द, सुन कर कैसी महान् प्रसन्नता को प्राप्त हो सकता है! और कितना अधिक उसके आशीर्वाद के पात्र हम अपने आपको उस समय समझ सकते हैं! इसका कुछ थोड़ा सा अनुमान यह विचार कर हो सकता है कि यदि मेरा बेटा मुझसे ऐसे शब्द कहे और ऐसे भाव प्रकट करे तो मेरे आनन्द की दशा उस समय क्या होगी! और इस आनन्द के जो फल पूर्वोक्त प्रकार के होते हैं उनको भी याद करके कैसी प्रसन्नता हमको होनी संभव है! और फिर अपने कामों को हम ऐसे भावों और संकल्पों के द्वारा करें तो उनका फल हमको उन महाशयों से कम मिलेगा क्योंकि जो कामना-पूर्वक अपने काम करते हैं? नहीं! कारण-कार्य्य के नियमा-

नुसार हमको उन कर्म्मों का फल भी पूरा बल्कि अधिक मिलेगा और यह महान् आनन्द, और इस आनन्द का फल, कि जो स्वर्ग के समान है, वह रहा रूख या घिलवे में। और कामना और लोभ के दोष से हम बरी समझे जाते हैं। ओहो! कैसे सुन्दर नियम हैं सृष्टि के, बधाइयाँ मनुष्य जाति तुझको, बधाइयाँ! इस प्रकार कर्म्म किये हुए कैसी सफलता लाने वाले और उनके करने में कितना आनन्द होता है; और क्या क्या सुन्दर प्रकार की आकाशवाणियाँ हृदय-आकाश से आती हुई इन कामों के करते हुए प्रतीत होती हैं? इस दशा को देख कर स्वर्ग-निवासियों के मन की दशा क्या होगी यह महादेव जी ने मानो पार्वतीजी को इस प्रकार बतलाते हैं :—

"सो सुख उमा जाय नहिं बरणा"

और इससे किसी कार्य्य में सफलता न होने की दशा में मनुष्य को अपना निर्दोष होना भी प्रतीत होता है। वेद भगवान में "गणानान्त्वा गणपतिंहवामहे......" आदि मंत्रों में भी शिव या शुभ संकल्पों के लिए मानो प्रार्थना की गई है, कारण चाणक्य नीति में लिखा है :—

आहार-निद्रा-भय-मैथुनानि
समानि चैतानि नृणां पशूनां।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः॥१॥

खाना, पीना, सोना, भय और मैथुन, ये बातें पशुओं और मनुष्यों में समान होती हैं, मनुष्य में एक ज्ञान ही विशेष है, और ज्ञान न हो तो यह भी पशु के समान है। यह सर्वथा सत्य है, बल्कि पशु अपनी जिम्मेदारी, को न समझने के कारण किसी बुरे काम के लिए

जिम्मेदार और दोषी नहीं ठहर सकता। परन्तु अपने पिता ईश्वर की आज्ञा समझ कर और संसार के हितार्थ, एक भक्त का खाना, पीना, सोना इत्यादि बड़े आनन्ददायक और बड़े सफल समझे जाने के योग्य कार्य्य है। ज्ञान ही से धर्म होता है इसलिए मनुष्य को वास्तविक धर्म करने का बहुत अवसर दिया गया है। कोई मनुष्य फल की कामना से लाखों रुपये दान करे, और एक भक्त ईश्वर के और संसार के प्रेम के निमित्त ईश्वर की आज्ञा समझ कर, और संसार का हित समझ कर, अपना भोजन करे, या सो जावे, या अपना सांसारिक व्यवहार करे तो उस दान करने वाले की अपेक्षा उसका भोजन करना, सो रहना, या व्यवहार करना, ईश्वर को अधिक प्रसन्न करने वाला, और अधिक प्रशंसा के योग्य, और धर्म का कार्य, और संसार में अधिक फल उत्पन्न करने का कारण समझा जायगा। मित्रगण, आपके चरणों के आशीर्वाद से मैं इस प्रकार के विचार मन में लाने का यत्न करके काम किया करता हूँ और बहुत बार इस यत्न में अधिकतर खाते पीते और सोते समय सफलता भी हो जाती है और जो आनन्द मुझको उस समय आता है उसको मैं ही जानता हूँ और हानि जो मुझको इससे होनी संभव है उसको आप बता दीजिये। परन्तु सफलता न भी हो तो भी कुछ परवाह नहीं, ईश्वर की प्रसन्नता और मेरे मनोरथों की सिद्धि में तो कोई अन्तर आता ही नहीं।

सज्जनो! यदि उसी छोटी सी क्रिया अर्थात् छोटी संध्या से काम लिया जाय तो इससे प्रेम और निष्काम होना और न जाने कैसी कैसी सुन्दर बातें मनुष्य के अन्दर विकसित होनी संभव हैं।

ईश्वर की कृपा से आप जैसे उसके नन्दनों के इस प्रकार के भाव से प्रेरित होकर जो कुछ कार्य्य अब भी देखने में आता है,

वह बहुत बड़े धन्यवाद के योग्य है । कैसी प्रसन्नता हमको होती है जब हम दृष्टि डालते हैं उस सुन्दर परिवर्तन पर, कि जो हमारे प्यारे मित्रों, मारवाड़ियों, के अन्दर इस दान के विषय में हुआ है । भला कहाँ तो उनकी उस प्रकार की बातें, कि जहाँ एक या दो कुएँ सुख पहुँचा रहे थे, वहाँ कई और बन कर, जल का निकास काफी न होने के कारण सारे ही बिगड़ गये, और कहाँ इनका हरिद्वार के ऋषिकुल की इस प्रकार सहायता करना, और विशुद्धानन्द-महाविद्यालय के लिए इस प्रकार कोशिश करना । आदर्श उच्च होने ही के लिए आपसे यह निवेदन किया है, और इसको भी मैं आप जैसे महाशयों के शुभ भावों ही का फल समझता हूँ कि हरिद्वार में स्वर्गवासी राय साहिब आनरेबल लाला निहालचंदजी, रईस मुजफ्फरनगर ने एक दान-धर्म-प्रचारिणी सभा स्थापित की थी, कि जिसका काम बड़े उत्साह के साथ उनके सुपुत्र, श्रीमान् आनरेबल लाला सुखबीरसिंहजी, और उनके सुयोग्य भाई चला रहे हैं । मित्रो, विचार और विश्वास कहता है कि दूर नहीं है वह समय कि जब हमारे देश की दान-प्रणाली ऐसी सुधरी हुई दीख पड़ेगी, कि प्रत्येक मनुष्य अपनी वित्त के समान, प्रेम और आनन्द, और शुभ, और पवित्र भावों से प्रेरित और निष्काम होकर बड़े बड़े और अन्य अवसरों पर पात्रों ही को दान देगा, जिससे देश ही को नहीं किन्तु सारे संसार को बड़ा लाभ पहुँचेगा ।

इस विषय में मैं यह भी कहा करता हूँ कि चन्दा मांगनेवाले जो बड़े से बड़े उत्तम काम के लिये भी चन्दा माँगें तो मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार उनको कोई दबाव डाल कर या किसी का जी दुखाकर चन्दा नहीं लेना चाहिये । जी दुखाना तो हिंसा और पाप है; और चन्दा मांगनेवाले अपने आप तो पहले ही हिंसक, पापी और अधर्म का

आदर्श उपस्थित करनेवाले बन गये, पीछे इस अधर्म से लिये हुए धन से जो धर्म का काम होगा उससे कोई बड़ी सफलता की आशा करना मेरी राय में व्यर्थ है। (कहानी सतोगुणी अन्न खानेवाले की) कई बार देखा गया है कि कई संस्थाओं को कई प्रकार से धन की हानि भी पहुँची है। इसके कारणों में से मैं एक कारण यह भी समझता हूँ कि उनमें अधर्म का पैसा आया है। जो कोई आपको श्रद्धा, प्रेम और आनन्दपूर्वक दे, बल्कि यह समझ कर दे कि मानो आपने उसपर अहसान किया कि उसके धन को ऐसे अच्छे काम में लगवाया और अपने आशीर्वाद के साथ दे, तो वह चाहे जितना थोड़ा हो, वह बड़े वरदान और अत्यन्त फलों का कारण होगा। ऐसे दान का एक पैसा लाखों रुपये से ज़्यादे कीमत रखता है।

मित्रगण! ईश्वर पर विश्वास रक्खो। वह चाहे तो क्या नहीं दे सकता है? और वह न चाहे तो क्या तुम सचमुच अधर्म से कुछ प्राप्त करही लोगे? बस लोगों की अनुदारता की शिकायतें करते फिरोगे और अपना दोष कुछ समझोहीगे नहीं, काम ईश्वर का है। उसको तुम से ज्यादा फ़िक्र है। यदि धर्म के साथ यत्न करने पर थोड़ा धन एकत्र होता है, तो थोड़ा काम करो और धन बिलकुल नहीं मिलता है तो बिलकुल न करो। ईश्वर जाने और काम जाने, तुमको और मुझको इससे क्या? निश्चय तुम्हारे मनोरथों को वह परम पिता किसी दूसरे प्रकार से पूरा करदेगा। तुमको अपने नाम की परवाह तो होनी चाहिए ही नहीं; और काम ईश्वर पूरा कर ही देगा। बस आनन्द के तार बजाओ और पूर्वोक्त निवेदन को विचारो तो प्रभाव अब भी काम कर रहे हैं। तुम्हारा काम हो रहा है और ईश्वर के यहाँ और स्वर्ग में तुम्हारा नाम भी हो रहा है और यदि दुनिया में नाम नहीं हुआ तो क्या परवाह है? काम करो तो

धर्म के साथ; नहीं तो न करो; आज तो हिंसा से चन्दा लेते हो, तो कल को धर्म के कामों के लिए चोरी, डाका और जूआ भी खेलोगे ? मैं तो कहता हूँ, कि जब किसी से चन्दा मांगो तो पहले तो तुम उसको अभय-दान, बल्कि शान्ति-दान और आनन्द-दान दे दो। उसको अमृत पिला दो और उससे कह दो कि "भैया वित्त समान देना और जितना प्रसन्न होकर देना चाहते हो उससे कम तो देदेना अधिक न देना"। तुम्हारा ऐसा कहना ईश्वर को लूट लेना है और इस प्रकार से मांगने पर यदि कोई तुमको आज कम देता है तो आगे को सदैव काल वह तुम्हारे काम का ख्याल रक्खेगा, औरों से भी तुम्हारी सिफारिश और कोशिश करेगा और तुम्हारा साथी और सहायक हो जायगा। यदि आप उसका जी दुखा कर लेते हैं तो आप उसको पाप नज़र आने लगते हैं और आगे को आपके लिए उसका और शायद उसके दोस्तों का भी घर बन्द हो जाता है।

मेरी राय में एक उपाय से काम लिया जाय तो करोड़ों रुपया साल धर्म के कामों के लिए प्राप्त हो सकता है। इस उपाय के विषय में मेरे बहुत से मित्रों ने आपस में परामर्श किया है और वे उससे बहुत ही प्रसन्न हैं। सब ने उसको संभव ही नहीं, किन्तु बड़ा सुगम और महान् फलदायक समझा है और एक को छोड़ कर सब ने उस की सहायता करना स्वीकार किया है। यदि एकाध विघ्न-कारक विशेष कारण न होते तो मेरे मित्र अब तक उसका आरंभ कर देते। परन्तु आशा होती है कि अब शीघ्र ही उसका काम आरंभ हो जायगा और कुछ आरंभिक कार्रवाई तो पं० दुर्गादत्तपंतजी ने आरंभ भी कर दी है।

वह उपाय यह है कि भारतवर्ष के सनातन-धर्मियों की एक महा-

सभा होवे जिसका प्रधान-कार्य्यालय कलकत्ते में हो। कलकत्ते में जैसा कि मेरे मारवाड़ी मित्रों ने एक मोटा अन्दाज़ा लगा कर बतलाया था, ६०,०००,००) रु० साठ लाख रुपये से ज्यादा बल्कि १,०,००,०००,०) रु० एक करोड़ तक प्रतिवर्ष केवल वहाँ के मारवाड़ी ही महाशय धर्मादे का निकालते हैं। और और स्थानों के मारवाड़ी, और कलकत्ते के और अन्य स्थानों के और लोग रहे अलग। यदि इन सब के धर्मादे के रुपये का हिसाब लगाया जावे तो ८–१०करोड़ की संख्या कोई बड़ी संख्या नहीं समझी जा सकती, परन्तु प्रथम तो जैसा कि मैंने निवेदन किया है, इस रुपये का और और जो दान होता है उसका एक बहुत बड़ा भाग इस प्रकार ख़र्च होता है कि उससे लाभ के बदले हानि होती है। दूसरे बहुत बार यह भी होता है, कि दिवाला निकल जाने पर धर्मादे का रुपया भी दिवाले में आ जाता है और बेचारे लोगों को एक कष्ट तो दिवाले का और दूसरा महान् कष्ट इस धर्मादे के रुपये के मारे जाने का होता है। विशेष कर औरतों को इसका महाक्लेश होता है। दिन-रात बेचारियों को यह ख़याल रहता है कि उनके परिवार पर कोई बड़ी आफ़त आने वाली है। ज़रा किसी लड़के का कान गरम हुआ, तो उनको डर हो जाता है कि कहीं लड़का परलोक को न चलदे।

हम लोगों की राय है कि "दान-धर्म-महासभा" के नाम से एक बड़ी सभा स्थापित होवे जिसके अधिकारी भारतवर्ष के प्रसिद्ध नगरों के प्रसिद्ध और योग्य पुरुष हों, इस सभा का एक बैंक हो और धर्मादे का रुपया इस बैंक में जमा हुआ करे। रुपया जमा कराने वाले उस रुपये में से ७५) रुपया सैकड़ा समय समय पर अपने हाथ से सुन्दर, शास्त्रोक्त रीति से धर्म के कामों में ख़र्च करने के लिए चेक द्वारा लेते रहा करें और शेष २५) रु० सैकड़ा उन नियमों के अनु-

सार जो सभा की ओर से इस विषय में बनाये जावें महासभा अपने अधिकारियों द्वारा भक्ति, प्रेम, ईश्वर-विश्वास, धर्म, गो-पालन आदि के प्रचार और विलायत आदि में हिन्दू यात्रियों और छात्रों के धर्म के रक्षार्थ और हिन्दू-धर्म-प्रचारार्थ धर्मशालाएँ आदि बनाने में और लड़के और लड़कियों के विद्यालय, ऋषिकुल, या आचार्य्य-कुल, विधवा-ट्रेनिङ्ग-होम (Training home) अनाथालय, बोर्डिंग हाउस, आदि धर्म के काम स्थापन करने, और इस प्रकार की वर्तमान उपयोगी संस्थाओं को सहायता देने आदि में ख़र्च किया करे। इन संस्थाओं में अनेकानेक बड़ी बड़ी उपयोगी शिक्षाओं के साथ नाम की महिमा, शुभ संकल्पों या शुभ इच्छाओं के माहात्म्य या छोटी संध्या आदि की ऐसी ऐसी शिक्षाएँ सनातनधर्म्मसंबन्धी हुआ करें कि जिनसे बड़ी सुगमता से न केवल शिक्षा पाने वालों के जीवन स्वर्गीय बन जावें, किन्तु वे औरों के जीवनों को स्वर्गीय बनाने वाले या "लोहे को पारस बनाने की मशीनें" बनाने वाले बन जावें।

इस सभा की ओर से उपदेशकों आदि द्वारा देश भर में सनातन-धर्मियों को प्रेरणा की जावे कि प्रत्येक मनुष्य जिसकी आमदनी १०) रुपया मासिक से अधिक हो, और उसके परिवार का ख़र्च इस बात की इजाज़त दे सके, तो अपने नफे का दसवां भाग धर्मार्थ निकाल कर उक्त प्रकार सभा के बैंक में जमा किया करे। जिस शहर या ज़िले से जितना रुपया सभा को मिले उसका, उसी के अनुसार हक़ समझा जाने की यथासंभव कोशिश हो।

यह तो सब जानते ही हैं कि नफा परम पिता परमात्मा का ही दिया हुआ होता है और यदि वह पिता हमको १०) रुपया नफे के दे कर उसमें से १) रुपया वापस माँगे तो हाय! हाय!! क्या हमको संकोच होना चाहिए? विशेषत: जब कि वह रुपया ऐसे सुन्दर कामों में

और प्राय: हमारे ही बाल, बच्चों आदि के उपकार में ख़र्च हो? संकोच करने से आगे को नफे की आशा भी कम होजाना संभव है और प्रेमपूर्वक दशमांश दे देने से हम भारी बर्कतों के अधिकारी बन जाते हैं। और इस रीति से हमारे हाथ में चन्दे आदि के देने के लिये उस ७५) रुपये सैकड़े में से रुपया भी हो जाता है और हम बिना अपना जी दुखाये प्रसन्नतापूर्वक दे सकते हैं और कंजूस कहलाने से भी बच सकते हैं। इसके अतिरिक्त इस सभा के कारण आपही आप लोगों का ज्ञान भी दान के विषय में उन्नत होता जायगा और वह ७५) रुपया सैकड़ा भी शनैः शनैः अति उत्तम प्रकार से दान होने लगेगा कि जिससे आप की इच्छा जो सारे संसार के भक्त बन जाने की है वह पूरी होने में बड़ी सहायता मिलेगी। आप का नमूना देख कर और लोग भी सब देशों के इसी प्रकार काम करेंगे और बहुत ही बड़े धन्यवाद के योग्य होंगे। वे महाशय जो इस काम में सम्मिलित होंगे, उनमें से प्रत्येक करोड़ों रुपये साल दान करने और परम उपकार करने के पुण्य का भागी समझा जायगा, और सनातन-धर्म्म पर जो कलङ्क लगाया जाता है वह भी दूर होकर उसको परम यश की प्राप्ति होगी।

जिन महाशयों से हम लोगों की बात-चीत इस विषय में हुई है, वे सब यह समझते हैं कि यह संभव है कि लोग इस सभा के मेम्बर बनने में बड़ी प्रसन्नता मानेंगे और इसकी सहायता दिल से करेंगे। इसकी सहायता करना एक महान् उपकारी काम में सम्मिलित होने और ईश्वर के पूर्ण आशीर्वाद का पात्र अपने आपको समझने का अवसर प्राप्त करना है कि जिसके आनन्द और लाभ से इसके मेम्बर न बनने वाले वंचित रहेंगे।

इस सभा के नियत होने से लोग प्राय: आर्यसमाज आदि की

ओर भी कम आकर्षित होंगे और हमारे प्यारे आर्य-समाजी भाई भी इस सभा को अपने बहुत से मन्तव्यों को पालन करने वाली समझ कर उससे बहुत प्रसन्न होंगे; और जिस प्रकार सनातन-धर्मी लोग उनके गुरुकुल आदि को अच्छा काम समझ कर सहायता देते हैं । उसी प्रकार वे भी शायद इसकी सहायता करेंगे ।

जिन महाशयों के पास धर्मादे का रुपया अब जमा है, वे उस रुपये को या उसके कुछ भाग को सभा नियत होने पर उसमें दे दें और सभा के नियत होने तक अपनी एक छोटी सभा बना कर उसमें जमा कर दें और जिनके पास धर्मादे का रुपया नहीं है वे जितना उनकी श्रद्धा हो उतना रुपया अपने पास अपनी छोटी सभा में दे दें और यह छोटी सभाएँ यह रुपया महा-सभा नियत होने पर उसको दे दें कि जिससे महा-सभा नियत होते ही काम भले प्रकार चल पड़े ।

जो महाशय महा-सभा नियत होने पर उसके मेम्बर होना चाहते हों वे निम्न-लिखित पत्र को पढ़ कर और उसके साथ के नक़्शे को भर कर उस पर अपने हस्ताक्षर करके, और हो सके तो औरों के भी हस्ताक्षर कराके, हमारा उत्साह बढ़ाने के लिए सेठ रामप्रसाद चिम्मन-लाल, १८ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट कलकत्ता के पास या पं० दुर्गादत्त पन्त, काशीपुर, ज़िला नैनीताल के पास या मेरे पास (मोहिनी-भवन देहरादून के पते पर) कृपा करके भेज दें । ये पत्र और नक़्शे सब जगह अलग भेजे जावेंगे ।

पत्र ।

ओं भूः ओं महः

पिताजी सब आपके भक्त बन जावें ।

हम .... स्थान और ....

ज़िले के निवासी इस बात को जान कर बहुत प्रसन्न हुए हैं कि

दानप्रणाली ।

एक भारतीय-सनातन-धर्म्मी-दान-धर्म बैंक, उन मन्तव्यों को विचार कर खुलने का विचार हो रहा है कि जो "दान-धर्म-महासभा" नामक लेख में प्रकाशित है कि जिस सभा का प्रधान कार्यालय कलकत्ता होगा और जिसके द्वारा मनुष्यों को प्रेरणा होगी कि प्रत्येक मनुष्य जिसकी आमदनी दस रुपये मासिक से अधिक हो और जिसके परिवार का खर्च इस बात की इजाज़त देसके कि वह अपने नफे का दसवाँ भाग धर्मार्थ निकाल कर इस बैंक में ऐसे ढंग से जमा कर दिया करे कि जिससे यदि वह चाहे तो उसकी आमदनी का भेद किसी पर प्रकट न हो। जो रुपया इस प्रकार जो परिवार जमा कराया करेगा उसमें से तीन भाग तो वह चेक द्वारा अपने हाथ से धर्मकार्य्यों में अपने इच्छानुसार खर्च करने को समय समय पर ले लिया करेगा और एक भाग को नियमों के अनुसार महासभा अपने अधिकारियों द्वारा भक्ति, प्रेम, धर्म, गोपालन आदि के प्रचार और विलायत आदि में हिन्दू यात्रियों और छात्रों के धर्म के रक्षार्थ और हिन्दू-धर्म-प्रचारार्थ धर्मशालाएँ आदि बनाने में और लड़के और लड़कियों के विद्यालय, ऋषिकुल, आचार्य्यकुल, विधवा-ट्रेनिंगहोम, अनाथालय, बोर्डिंगहाउस, आदि धर्म के काम स्थापन करने और इस प्रकार की वर्तमान लोकोपकारी संस्थाओं को सहायता देने आदि में ख़र्च किया करेगी कि जहाँ अनेकानेक बड़ी बड़ी उपयोगी शिक्षाओं के साथ नाम की महिमा, शुभ संकल्पों या शुभ इच्छाओं के माहात्म्य या छोटी सन्ध्या आदि की ऐसी ऐसी शिक्षाएँ सनातन-धर्म-सम्बन्धी हुआ करेंगी कि जिनसे बड़ी सुगमता के साथ न केवल शिक्षा पाने वालों के जीवन स्वर्गीय जीवन बन जायँगे किन्तु वे औरों के जीवनों को स्वर्गीय बनाने वाले या "लोहे को पारस बनाने की मशीनें" बनाने वाले बन जायेंगे।

इस सभा में इस बात का ख़्याल रहेगा कि जिस ज़िले या शहर आदि से जितना रुपया मिले जहाँ तक हो सके उसका हक़ उसी के अनुसार समझा जावे।

हम भले प्रकार जानते हैं कि नफा हमारे प्यारे पिता ईश्वर का दिया हुआ होता है। और यदि ईश्वर हमको दस रुपये देकर एक रुपया वापस मांगे तो हाय हाय! क्या हमको उस में संकोच होना चाहिए? विशेषत: जब कि वह रुपया ऐसे सुन्दर कामों में और प्राय: हमारे ही बाल-बच्चों आदि के उपकार में ख़र्च हो! संकोच करने से आगे को नफ़े की आशा भी कम होजाना संभव है; और प्रेम पूर्वक दशमांश दे देने में हम भारी बर्कतों के अधिकारी बन जाते हैं!

जो कोई इस सभा का मेम्बर बन कर इस काम की सहायता करेगा वह अपने आपको महान् उपकारी और ईश्वर के पूर्ण आशीर्वाद का पात्र समझ सकेगा और जो मेम्बर नहीं बनेगा वह इस के आनन्द और लाभ से वंचित रहेगा।

हम इस सभा के मेम्बर होना बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार करते हैं और इसमें अपना अहोभाग्य समझते हैं और हम अपने नफ़े का दसवाँ भाग हर साल धर्मार्थ निकाल कर इस सभा के सुपुर्द किया करेंगे और अब हमने इस कदर रुपया कि जितना हमारे नाम के आगे नीचे के नक़्शे में लिखा है धर्मार्थ निकाल दिया है। अभी तो यह रुपया हमारी स्थानीयसमिति के हाथ में है कि जिसके सभासद...आदि हैं, और जब नियम बन कर और रजिस्टरी होकर यह सभा स्थापित हो जायगी तब यह रुपया और उस समय तक जो और रुपया धर्मार्थ हम निकालेंगे वह उसके सुपुर्द कर देंगे। हम को निश्चय है

कि परम पिता परमात्मा का उसके बच्चों के शुभ उद्योगों पर आशीर्वाद होगा और हमारे ये उद्योग सारे संसार में महान् और परम फल माने के कारण होंगे।

नक़शा।

ओं भूः ओं महः

पिताजी सब आपके भक्त बन जावें।

दान-धर्म-महासभा के सभासद होने का नक़शा

नम्बर	नाम	ख़िताब आदि	पता	रुपया जो अब दिया		हस्ताक्षर	कैफियत
				रु०	आ०		

इस सम्बन्ध में मैं इतना और निवेदन कर देना आवश्यक समझता हूँ कि धनी लोग तो दान कर सकते हैं, बेचारे निर्धन क्या इस दान से विमुखही रहेंगे ? नहीं बड़े बड़े आदमी, जो लाखों रुपया दान करते हैं वे रुपया अपनी पाकिट में तो रखतेही नहीं, कि जो निकाल कर देदें, वह अपने खज़ांची को ज़बानी या चेक आदि द्वारा हुक्म दे देते हैं और दान हुआ समझा जाता है। परन्तु निर्धन और धनी दोनों ही, एक बहुत बड़ा दान करने के अधिकारी हैं। यदि वे, जैसा कि पहले भी कहा गया है, अपने अपने सच्चे ख़ज़ांची परम पिता परमात्मा को ही ये शब्द कह दें कि "पिताजी सब आपके भक्त बन जावें" तो उनकी ज़बान हिलाने, बल्कि मन के विचार मात्र से, परमात्मा, कारण-कार्य के नियमानुसार वह फल पैदा कर देता है कि रुपये से वह कदापि नहीं हो सकता। जो कोई इस दान को करें, कि जो इस छोटी संध्या द्वारा ऐसी सुगमता से होना संभव है, तो निश्चय है कि वह वित्त समान पात्र कुपात्र को विचार कर अवश्यमेव दान करेगा।

व्यवहारादि

अब मैं वैश्य जाति के जो सांसारिक धर्म हैं उनकी ओर कान-फरेन्स का ध्यान कुछ मिनटों के लिये दिलाने की आज्ञा चाहता हूँ। गीता में वैश्यों के कर्म इस प्रकार वर्णित हैं:—

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजं ।

अर्थात् खेती, गोरक्षा और बनिज ये वैश्य जाति के स्वाभाविक कर्म बतलाये गये हैं। अभिप्राय यह है कि जो कोई वैश्य इन कामों में से

एक या ज्यादा को करके देश के धन को शेष तीनों वर्णों के गुज़ारे के लिए न बढ़ावे तो वह अपने धर्म से पतित हो जाता है या पापी बन जाता है। कोई कोई लोग कहा करते हैं कि धन का कमाना या संसार के काम करना पाप है। परन्तु ऐसा कहना शास्त्रों की शिक्षा के विरुद्ध है और विचार कर देखा जावे तो शास्त्रों की शिक्षा जैसा कि और सब विषयों में है ऐसे ही इस विषय में भी परम माननीय है। ज़रा ध्यान तो दीजिये कि इन कामों से कितना लाभ संसार को पहुँचता है। खेती से अन्न पैदा होता है जिससे दुनिया पलती है। क्या यह छोटे उपकार का काम है? दुकानदार लोग कहीं कहीं से बड़े यत्नों और परिश्रमों से माल मँगा मँगाकर और उसको ख़ास तौर पर तैयार करके या कराके कितनी सुगमता लोगों के लिए पैदा कर देते हैं। क्या यह छोटे उपकार की बात है? महारानी विक्टोरिया और महाराज एडवर्ड के स्वर्ग-वास होने पर केवल कुछ घंटों के लिए बाज़ार बन्द हुए थे। लोगों को इस थोड़ी देर में कितना दुःख पहुँचा? रुपया तो उनके पास था। परन्तु रुपये को वे न खा सकते थे और न पहन सकते थे और न किसी और काम में लगा सकते थे। आख़िर जब दुकानें खुलीं तब उन दुकानदारों ही की बदौलत इस ऐसी लाँछित परन्तु परम परोपकारिणी वैश्य जाति ही की बदौलत उनको रुपये के बदले में उनके सुख का सामान मिल सका। क्या दुकानदार का काम परोपकार का काम नहीं? क्या चमार और मेहतर तक का काम परोपकार का काम नहीं? यह कदापि नहीं सोचना चाहिये कि दुनिया के काम करना अधर्म है, एक फ़ारसी के कविने महाराजा जनक की सी अवस्था को कैसी सुन्दरता से कहा है—

نه میگویم که از دنیا جدا باش
بهر کارے که باشي با خدا باش

किसी ने कहा है। "Work is worship" अर्थात् "कार्य्य करना ही पूजा है," और "यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम्" अर्थात् "जो जो काम मैं करता हूँ वे सब हे शंभो तेरा ही आराधन है" और एक और वचन है "तन से काम और मन से राम" इस प्रकार के विचार को मन में लाकर मैं अपने यहाँ के राज मज़दूरों और सौदा बेचनेवालों और सौदा ख़रीदनेवालों और किसानों आदि को कहा करता हूँ कि अपने तन से काम करते रहो और मन में अपने परम पिता ईश्वर से बातें करते रहो । तुम अपने दिल में कहते रहो कि "पिता जी सब आपके भक्त बन जावें" और विश्वास से सोचते रहो कि ईश्वर तुमको "ओंभूः ओंभूः" कह रहा है । तब तुम्हारा जीवन मामूली साधुओं से उत्तम होगा क्योंकि साधुओं के समान मन से तुम भी भजन करते रहोगे। परन्तु जब कि इन मामूली साधुओं का तन कुछ उपकार का काम न करता होगा तो तुम्हारे तन से ईश्वर के बच्चों के बड़े बड़े सुख के काम मसलन अन्न पैदा करना, मकान बनाना, सौदे के द्वारा और सौदे के दामों द्वारा अमृत देना इत्यादि होंगे और तुमको विश्वास करने का अवसर प्राप्त होगा कि ईश्वर तुम्हारे तन के काम से भी अनन्त प्रसन्न होते हैं । जब तुम अपनी रोटी खाने बैठोगे तो तुमको यह सोच कर अति प्रसन्न होने का अधिकार होगा कि तुम्हारी रोटी दूसरों के उपकार के काम करके प्राप्त होती है। (कहानी उठ नारायण की देखो) और इस प्रसन्नता से बेचारे साधारण साधू विहीन रहेंगे। हाँ वे साधू कि जो अपने उपदेश और शिक्षा आदि से संसार का महान् उपकार करते हैं, और मन से भजन आदि का काम लेते हैं उनकी प्रशंसा भला कौन कर सकता है ? ऐसे ही महात्माओं की कृपा से मुझको भी महान् आनन्ददायक उपदेश मिले हैं और मैं उनका बड़ा कृतज्ञ हूँ ।

हाँ प्यारे ईश्वर के बच्चो! दुनियादारो, तुम्हारा यह हक़ है कि अपना काम करते हुए यह समझ कर आनन्द अमृत पीओ कि जब तुम अपना काम करते हो तो स्वर्ग से मानो फूलों की वर्षा होती है और आनन्द के गीत गाये जाते हैं, और महादेव जी पार्वतीजी को उस समय स्वर्ग निवासियों का जो महान् आनन्द होता है वह यह कह कर बतलाते हैं कि "सो सुख उमा जाय नहिं बरणा"। हाँ प्यारो! तुम ईश्वर के पुत्र और नन्दन हो। तुम्हारा हक़ है कि जिस प्रकार महाराज मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रघुनाथजी के आने पर बड़े आनन्द और चाव से स्त्रियाँ एक दूसरे से कहती थीं:—

चलो सखी दर्शन कर लें रथ में रघुनन्दन आवत हैं।

उसी प्रकार, स्वर्ग में, तुम्हारे हर समय के काम को, तुम्हारे हर समय की लीला को कि जो उन महान् आत्माओं की दृष्टि में बड़ी प्रिय प्रतीत होती है स्वर्ग-निवासी लोग और स्वयं ईश्वर भी बड़े चाव के साथ एक दूसरे को देखने के लिए कहते हैं। उदाहरण के लिए समझ लो कि तुम्हारे भोजन के समय स्वर्ग वाले कहते हैं "चलो सखा दर्शन करलें। अब भोजन लीला होती है"। और वह जो श्लोक है जो पहले भी पढ़ा गया है अर्थात् "आत्मा त्वं गिरिजामति........" उसमें जो ये शब्द हैं कि "यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलम् शंभो तवाराधनम्" इनसे इस विचार को बहुत पुष्टि मिलती है, कि अपना काम, निष्काम होकर और प्रेम और भक्तिपूर्वक करते हुए ईश्वर और सारे संसार के आशीर्वाद के पात्र बने हुए, स्वर्ग के निवासियों की दृष्टि में तुम अत्यन्त प्रिय दीख पड़ते हो और विचार करने पर बुद्धि बड़े स्पष्ट रूप से इस बात की साक्षी देगी और जितना पूर्वोक्त प्रकार के विचार से काम लेकर, आनन्द लिया जावेगा उतनी ही सफलता इन कामों से होगी और आनन्द के और फल रहे वे अलग!

इससे यह तो भले प्रकार सिद्ध होता है कि जो दयाहीन और प्रेमहीन लड़के आदि अपने माता-पिता आदि को तड़पते छोड़ कर, उन के इस लोक और परलोक के सुख की परवाह न करके महास्वार्थियों और महापापियों के समान केवल अपने उपकार की बड़ी संदिग्ध आशा रख कर, घर-बार को छोड़ कर साधू बन जाते हैं वे किसी भांति भी उन गृहस्थों से अच्छे नहीं, जो पूर्वोक्त प्रकार दुनिया का काम और भजन करते हुए अपने तन और मन दोनों से सारे संसार का उपकार करते हैं। जिन लोगों ने अपने माता-पिता आदि के साथ इस प्रकार का व्यवहार किया है तो औरों को उनसे क्या आशा हो सकती है? जब ये साधू लोग किसी को बाबा या बच्चा कहते हैं तो उनसे भय ही प्रतीत हो सकता है जो अपने माता-पिता और भाई-बहन बच्चों के साथ प्रेम का बर्ताव करते हैं वे जब किसी को पिता माता या बेटा या भाई आदि कहें तो आशा हो सकती है कि वे वेही पवित्र और स्वर्गीय नाता उनके साथ बरत कर आप स्वर्ग का आनन्द लेते हुए औरों को भी आनन्द देगें। साधू यदि कोई हो तो बहुत ही असाधारण अवस्थाओं में होना चाहिये, वानप्रस्थ तो चाहे लोग हो जाँय परन्तु भिक्षा माँगने वालों के साथ जो बर्ताव आज कल होता है और माँगने वालों की जो इतनी बड़ी संख्या हो गई है और सच्चे झूठे साधुओं का पहचानना जो ऐसा कठिन होगया है, उसके कारण अच्छे, सच्चे साधू अच्छा उपदेश करने वाले भी यथोचित श्रद्धा के साथ कम देखे जाते हैं और माँगने वाले समझे जाने के कारण उनके उपदेशों का प्रभाव भी भले लोगों पर प्रायः कम पड़ता है। मेरी राय में बहुत अच्छा हो कि भिन्न भिन्न सामर्थ्य के गृहस्थी लोग भिन्न भिन्न अच्छे साधुओं के खर्च का बोझ अपने ऊपर ले कर उन साधुओं को माँगने से मना करदें और वे साधु उपदेश देने से पहले ही लोगों को अभय-दान

दे दिया करें अर्थात् कह दिया करें कि "हम माँगने को नहीं आये हैं" इससे उनके उपदेशों से बड़ा लाभ होने की आशा है ।

परन्तु, इन कामों को करते हुए इस प्रकार के विचार और उसका आनन्द तभी आ सकता है, कि जब ये कार्य्य सत्य और ईमानदारी ही से नहीं किन्तु प्रेमभाव और शुद्ध संकल्प के साथ और निष्काम हो कर ईश्वर-आज्ञा-पालनार्थ और संसार की सेवा के लिए किये जाँय । यदि वही छोटी सन्ध्या का प्रयोग किया जावे तो आवश्यक बुद्धि और हृदय की पवित्रता, और आत्मिक बल इत्यादि, अनेक गुण मनुष्य के अन्दर, बहुत जल्द आ जाने बहुत सुगम हैं कि जिन से ये सब बातें होसकें । मैं फिर आप को बधाइयाँ देता हुआ कहता हूँ कि विश्वास कह रहा है, कि आप के भाव, प्रतिक्षण, संसार में, बड़ा परिवर्तन उत्पन्न कर रहे हैं । ईश्वर का आशीर्वाद आपके भावों पर है और मेरा मन तो यह कहता है, कि समीप है, बहुत समीप है वह समय जब कि सब जातियाँ अपने अपने काम शुद्ध संकल्प या शिव संकल्प या मंगल संकल्पों के साथ भक्तों के समान करेंगी; और हमारी वैश्य जाति विशेष कर इस अति उत्तम राज्य में, कि जो ईश्वर के प्रबन्ध से हमारे देश में वर्तमान है, जिसके समान अपने अपने धर्म के पालन की सुगमता, कम से कम बहुत काल से, किसी राज्य में भारत को नसीब नहीं हुई, और जिसके लिए, हम ईश्वर को जितना धन्यवाद दें थोड़ा है, इस बड़ी बुद्धिमान् अँग्रेज जाति से शिक्षा लेकर, उनके आदर्शों को सामने रख कर अपने कामों को करेगी । हमको इसके चिन्ह या लक्षण अब भी बहुत कुछ दिखाई देरहे हैं । हमारे देश के लोग, कृषि के सम्बन्ध में, पश्चिम और पूर्व की विद्याओं में ज्ञान प्राप्त करने का यत्न कर रहे हैं; पशुपालन की ओर भी हमारा ध्यान खिँच रहा है । देश के धन की रक्षा के निमित्त, स्वदेशी वस्तुओं के बर्ताव का

ख़्याल लोगों के हृदयों में बढ़ता जाता है ; और शिल्पविद्या, इंजि-नियरिंग, इत्यादि के काम सीखने की ओर भी लोग बराबर आकर्षित होते जाते हैं। कम्पनी और बैंकें आदि भी हमारे देश में उन्नतियाँ कर रही हैं; और विशेष कर हमारे मारवाड़ी भाई तिजारत के काम में उन्नति कर रहे हैं और ये बहुत ही बड़े धन्यवाद के पात्र हैं। सारा देश एक ज़बान से कह रहा है कि इन हमारे प्यारें की जय हो, जय हो।

इस सम्बन्ध में, यह भी निवेदन करना उचित प्रतीत होता है कि हड्डियें का खाद बहुत लाभदायक होता है। हड्डियें में फ़ासफ़ोरस होता है और उनके खाद के कारण पैदावार ज्यादा होती है। और जे अन्न पैदा होता है, उसका गुण बहुत अधिक होता है। यह बहुत बड़े विचार के योग्य बात है, कि हज़ारें मन हड्डियाँ जो अन्य देशों को जा रही हैं, जाने से रोकी जाँय। अन्न आदि जो अब बिना हड्डियें के खाद के पैदा होते हैं वे बहुत निर्बलता-पूर्ण होते हैं। ज़मींदारों को चाहिये कि अपने अपने गांवें की हड्डियाँ बाहर न जाने दें।

यह सच है, कि यूरुप और अमेरिका और जापान आदि ने तिजारत, शिल्पविद्या, आदि में जो उन्नति की है, वह बहुत अधिक है; और वे हम से बहुत आगे हैं। परन्तु मित्रगण, मैं फिर कहूँगा कि इन सब बातें के ठीक प्रकार से करने के लिए बुद्धि, बल, तेज और धर्म-भाव की आवश्यकता है। लाख आप एक आदमी को कहियेगा और समझाइयेगा, कि यह काम करना चाहिये और वह नहीं करना चाहिए और उसके अन्दर बुद्धि बल, तेज और धर्म-भाव न हो, ते आपके समझाने से कुछ भी नहीं होगा। आप उसको कुछ भी न कहें, केवल उस के अन्दर यह चारों बातें हों, या आ जावें, ते आप देखेंगे कि वह उन सब बातें को करता हुआ

दीख पड़ेगा, कि जिनको आप चाहते हैं और इसका साधन मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार वही छोटी सन्ध्या है। क्या अच्छा होकि सब लोग इस ऐसी सुगम रीति द्वारा अपने अन्दर ख़ूबही बुद्धि, बल, तेज, आदि शीघ्र शीघ्र भर डालें। आप अपने देश के उपकार के लिए शिक्षा दिलाने को यूरोप आदि अपने नौजवानों को भेजना चाहा करते हैं वह भी कीजिये; परन्तु मैं यह भी कहता हूँ कि यहाँ घर बैठे प्रत्येक नर, नारी, बूढ़ा, जवान और बच्चा इस छोटी सन्ध्या के द्वारा बड़ी बुद्धि आदि अनेक गुण प्राप्त कर सकता है, जिससे बड़ी २ ईजादें होसकें। पत्थर के कोयले से हीरा बना लेने की बुद्धि प्राप्त करना भी असंभव नहीं।

इस विषय में मैं इतना और निवेदन करना चाहता हूँ कि हम को काम या रुपये का ग़ुलाम नहीं बनना चाहिये। काम और रुपया हमारे वास्ते है; हम उनके वास्ते नहीं हैं। यदि हम काम करते और रुपया कमाते ही मर जावें और अपने पीछे अपने बच्चों को भी वही काम के और रुपये के पीछे मरते रहने की जायदाद दे जावें, तो फ़ायदा क्या हुआ ? जिस प्रयोजन से काम किया जाता है और रुपया कमाया जाता है अर्थात् सुख की प्राप्ति हो वह तो हमको प्राप्त होता ही नहीं। हम खाने, पीने, हवा खोरी और आराम से भी अपने आप को वञ्चित कर लेते हैं। परिणाम यह होता है कि बुद्धि और बल, जो काम करने और रुपया कमाने के लिए ज़रूरी हैं, हम उनको खो बैठते हैं और फिर हम काम करने और रुपया कमाने के योग्य भी नहीं रहते हैं। परन्तु यदि काम करते हुए और रुपया कमाते हुए साथ साथ हम काम से और रुपये से सुख भी उठाते रहें और अपने आराम, खान, पान आदि का विचार भी रक्खें; तो यह काम और रुपया हमारे ग़ुलाम अर्थात् हमको सुख पहुँचाने वाले बन जायँगे। और हमारे अन्दर इस के आराम आदि कारण काम करने और रुपया कमाने की

योग्यता भी बढ़ती जावेगी । अँग्रेज़ साहबों से हमको इस विषय में भी शिक्षा लेनी चाहिये । वे इतवार को तो पूरा ही आराम करते हैं, बाक़ी छः दिनों में भी अपने खान पान, हवा खोरी और टेनिस-क्लब की हाजरी, खेल-कूद आदि द्वारा आनन्द उड़ाते रहने की पूरी कोशिश रखते हैं और फिर कुछ काल के अनन्तर महीने दो महीने के लिए पहाड़ों आदि पर चले जाते हैं । इसके फल को आप विचार लें । वे थोड़ी देर में इतना काम कर लेते हैं कि जितना हम लोग बहुत ज़्यादा देर में कर सकते हैं और रुपया भी वेही कमाते हैं । कैसे आग, पानी, बिजली, भट्टी, लोहे आदि तक से उन्होंने काम लिया है । कारण यह है कि उनके शरीर और बुद्धियाँ ठीक रहती हैं और छोटी संध्या इस बात में भी हम को सफलता दे सकती है ।

यहाँ पर एक बात की ओर आप का ध्यान दिलाना उचित है । रामायण में गुसाईं जी ने बहुत ही ठीक कहा है :—

"हानि लाभ जीवन मरन जस अपजस विधि हाथ"

दूसरे शब्दों में हानि-लाभ आदि मनुष्य के अपने ही कर्मों के फल होते हैं । व्यवहार, कृषि आदि में जब टोटा या नुक़सान हो जाता है तो निश्चय वह हमारे पिछले कर्मों का फल होता है । ऐसे समय में ईश्वर के पुत्रों को घबराना नहीं चाहिए । घबराने से हानि ही होती है, लाभ कुछ नहीं । बुद्धि बल आदि का नाश होता है जिससे आगे के काम में भी हर्ज होता है और निर्बल परमाणु शरीर में से निकल निकल कर दूसरों के लिए हानिकारक होते हैं । टोटे और अनेक प्रकार के दुःख क्लेश आदि को भी बड़े और महान् लाभ का कारण बना लेना चाहिए अर्थात् वही "पिता जी सब आपके भक्त बन जावें" कहते हुए परम परिपूर्णता के भंडार में पहुँच जाना और उसका वही "ओंभूः ओंभूः" अपने आपको कहते हुए सुनना और संसार

को निहाल करने वाले बने हुए अपने आपको पाना; कि जो एक दशा है जो तीन लोक के राज्य से बढ़ कर है। सुनिये:—

"सुख के सिर पर सिल पड़े जो हरि को बिसराये ।
बलिहारी वा दुःख की जो हरि-चर्णन में लाये ॥"

यह भी याद रहे कि जैसा पहिले निर्देश कर दिया गया है हमारी मन चाही बात न होने में किसी का भी दोष सिवा हमारे या हमारे कर्मों के नहीं है। जब मनुष्य की ओर से अन्याय होता है तो वह भी ईश्वर की ओर से न्याय ही समझा जाना चाहिए। जो दशा हम पर आती है वह हमारे ही कर्मों का फल है। लोग प्रायः कहा करते हैं कि "First deserve and then desire." अर्थात् "पहिले (किसी पदवी आदि के) योग्य या अधिकारी (ईश्वर की दृष्टि में) बनो तब उसकी इच्छा करो" परन्तु ऊँचे दरजे की बात यह है कि "Only deserve and do not desire." अर्थात् "(उच्च पदवी आदि की) योग्यता प्राप्त कर लो और उनकी इच्छा (कदापि) न करो" वे तुमको बिना इच्छा के स्वयं ही प्राप्त हो जायँगी। दुनिया में कोई शक्ति नहीं है कि जो तुमको उनकी प्राप्ति से रोक सके। ऊँचे पदों को स्वीकार करने के लिए तुम्हारी खुशामदें की जायँगी। परन्तु हमारी आज कल की कार्यवाही से प्रतीत होता है कि मानो हम कहते हैं कि "Only desire and do not deserve" अर्थात् "केवल इच्छा करो और योग्य न बनो"—या कम से कम Never mind if you do not deserve; go on desiring; and go on complaining and murmuring if your desires are not fulfilled." अर्थात् "कुछ परवाह नहीं यदि तुम (किसी पदवी आदि के) योग्य नहीं हो। परन्तु (उसकी) इच्छा अवश्य किये जाओ; और वह इच्छा पूरी न हो तो (औरों की) शिकायत

करते रहो और मन में दुःखी होते रहो"। चाहे उनका पूरा न होना पिछले कर्म्मों को विचार कर इसी बात का सबूत है कि तुम योग्य नहीं हो कि तुम्हारी इच्छाएँ पूरी हों। यूरुप अमरीका आदि के लोग और किसी अंश तक हमारे मुसलमान भाई भी हमारे शास्त्रों के मन्तव्यों पर बहुत कुछ चलते हैं अर्थात् योग्यता प्राप्त करते हैं।

इस सम्बन्ध में यह भी कहना चाहता हूँ कि मैं यह भली भाँति जानता हूँ कि इंडियन नैशनल कांग्रेस के लीडरों में बहुत लोग बड़े योग्य और महानुभाव हैं कि जो देश के सच्चे रत्न हैं और इसमें सन्देह नहीं कि उनके संकल्प पवित्र हैं और यह भी ठीक है कि उनके काँग्रेस के यत्नों से भारतवासियों को कुछ लाभ भी पहुँचा है। चाहे लाभ और हानि आदि को मैं पूर्व कर्म्मों का ही फल एक हद तक समझा करता हूँ और इन यत्नों को कर्म्म समझता हूँ कि जिनके फल आगे या शायद अब भी मिलेंगे तो भी उन लाभों का कारण काँग्रेस को कह देने में मुझको कोई संकोच नहीं। परन्तु जहाँ एक ओर ~~औसत से~~ किंचित् मात्र लाभ काँग्रेस से प्राप्त हुए हैं वहाँ कुछ नासमझ आदमियों के कारण देश को हानि भी बहुत बड़ी पहुँची है। हिन्दुओं में "भारत-माता" "देशभक्ति" आदि शब्द अब कुछ थोड़े काल से प्रयुक्त होने लगे हैं। इससे पहले इस परम उदार धर्म्म के मानने वालों में पृथिवी-माता, जगन्माता, जगद्धितैषिता आदि शब्दों का प्रयोग हुआ करता था। एक हिन्दू के लिए सारे विश्व को अपना देश नहीं किन्तु कुटुम्ब मानने की परम उदार शिक्षा मिलती थी। "उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्" प्रातः स्मरण के श्लोक में जो पहले कह चुका हूं हिन्दुओं के सारे काम उनकी संसारयात्रा समस्त संसार के लिए हितकर बनाने के लिए हैं, "हिताय लोकस्य" ये शब्द उस श्लोक में आये हैं। आर्य्यसमाज के परम उदार संस्थापक ने उस समाज का छठा

नियम जो बनाया था उसके शब्द ये हैं। सारे संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश है अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक-सामाजिक उन्नति करना केवल एक छोटे से पृथ्वी के टुकड़े को अपना देश मान कर बड़े तंगदिल और परमस्वार्थी बन जाने का भाव हिन्दुओं में खास खास पश्चिमी देशों से आया हुआ प्रतीत होता है कि जहाँ यदि कोई एक देश दूसरे का मित्र है भी तो शोक के साथ कहना पड़ता है कि उसका कारण केवल स्वार्थ ही है। सच्चा प्रेम और उदारता और दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझना ये बातें सिवा कुछ पादरियों आदि के वहाँ कम दिखाई पड़ती हैं। प्रत्येक देश दूसरे को हड़प कर जाना चाहता है। अपनी उन्नति और दूसरों की हानि की इच्छा रात दिन प्रत्येक देश में रहती है। विद्या इसी काम के लिए प्राप्त की जाती है। विद्या, बुद्धि और बल से ईश्वर के निकट पहुँचने या उसके आज्ञापालन और दूसरों को सुख पहुंचाने और भक्ति और प्रेम आदि के स्वर्गीय आनन्द के फैलाने के बदले केवल स्वार्थसाधन और सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति और दूसरों के धन हरने का ही काम प्रायः लिया जाता है। और यही हवा अब हमारे देश में पहुँच गई है और हिन्दू जाति भी इसका शिकार हो चुकी है। वह जो प्रेम, उदारता और परमार्थ का महान् आनन्द और लाभ था कि जिससे जाति के अन्दर बुद्धि, बल, तेज आदि भी उन्नत होते थे और उन्हीं से देश का और जाति का भी हित हो सकता था और धन की भी प्राप्ति हो सकती थी आज उसके बदले लोगों के दिलों में बैठे बिठाये द्वेषभाव और अशान्ति की अग्नि प्रज्वलित होती जा रही है और शान्ति का ख़ून हो रहा है कि जो रही सही बुद्धि, बल, तेज आदि को और डुबोता जाता है और देश की भी उन्नति और हित के बदले अवनति और अहित का कारण होता

जाता है । और धन की प्राप्ति भी असंभव होती जाती है । इस बात को मैं एक उदाहरण द्वारा कुछ सुगमता से प्रकट कर सकूँगा। मेरे एक मित्र एक सर्कारी दफ़्र में नौकर थे, कि जहाँ उनको कुछ वेतन मिलता था । एक दूसरे दफ़्र में एक जगह खाली हुई और यत्न करने पर वह उनको मिल गई। इस नई जगह पर मेरे मित्र का उसकी पहली जगह के वेतन से दुगने के लगभग था और उससे उसको बहुत बड़ा हर्ष हुआ । परन्तु हा ! शोक !!! इस हर्ष ने बहुत शीघ्र ही बड़े कष्ट का रूप धारण कर लिया ।

शीघ्र ही बड़े क्लेश की अग्नि मेरे मित्र बेचारे को मानो दग्ध करने लगी, कारण यह कि इस जगह पर उससे पहले एक यूरेशियन था और उसको कुछ अधिक वेतन मिलता था । मेरे मित्र ने यह सोचा कि यूरेशियन और यूरूपियन लोगों के साथ इंडियन लोगों की अपेक्षा सरकार कुछ अच्छा बर्ताव करती है और यह उसके महान् दुःख का कारण हुआ । यदि वह जगह उसको न मिलती और वह अपनी पहली ही थोड़ी वेतनवाली जगह पर लगा रहता तो इस कष्ट से वह बेचारा बचा रहता और शान्ति का लाभ उठाता रहता ।

मित्रगण, गुण और दोष प्रत्येक दशा में और प्रत्येक वस्तु में और प्रत्येक मनुष्य में होते हैं और रोशन और अँधेरा पहलू हर दशा और वस्तु और मनुष्य का होता है । दोषों को और अँधेरे पहलुओं को केवल उनकी निवृत्ति के यत्न के निमित्त तो चाहे कुछ थोड़ा बहुत देख लो, उनके देखने और विचार करने से दुःख और शोक और दुःख और शोक के जो पूर्वोक्त प्रकार के अति निन्दित फल हैं वे ही प्राप्त होंगे । परन्तु इस वेदमंत्र अर्थात् " विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद् भद्रं तन्न आसुव " के भाव के अनुसार पूर्णानन्द और उस आनन्द का महान् लाभ उठाया चाहते हो तो

गुणों को और रोशन पहलू को अधिकतर देखा करो। इससे द्वेष और क्लेश के बदले प्रेम "और शान्ति के भाव" आप के अन्दर आते जायँगे और आपको शनैः शनैः परम योग्यता भी प्राप्त होती जायगी और पूर्वोक्त प्रकार से सारे संसार की उन्नति के साथ देश की उन्नति उसका एक आवश्यक और अनिवार्य फल होगा।

देशहितैषिता और जन्मभूमि में प्रेम का भाव एक दर्जे तक कम से कम आज कल के ज़माने में मनुष्य की स्वाभाविक सी बात भी हो गई है और इससे बचा हुआ मैं भी नहीं हूँ और बातों के अतिरिक्त जहाँ तक हो सकता है मैं स्वदेशी ही वस्तुओं को काम में लाता हूँ। और यदि कोई मनुष्य कहे कि वह भारत का हित मेरी अपेक्षा अधिक चाहता है तो मैं उसके दावे को कदापि स्वीकार नहीं करूँगा। मैं भारतमाता का उतनाही बड़ा हितैषी होने का दावा करता हूँ कि जितना कोई और भी कर सकता है। परन्तु साथ ही मैं इँगलैंड आदि का भी उतना ही बड़ा हितैषी हूँ और मैं कहता हूँ कि मुझ से अधिक इँगलैंड और ब्रिटिश राज्य के हितैषी लार्ड हार्डिंग और महाराज जार्ज भो नहीं हो सकते हैं, परन्तु साथ ही यह भी है कि आपके चरणों की कृपा से मेरे हृदय में किसी की ओर से द्वेष नहीं किन्तु प्रेम का ही भाव सब की ओर है और मेरा मन साक्षी देता है कि मेरे द्वेषी भी कोई विरले ही होंगे। इससे और छोटी सन्ध्या आदि से जो आनन्द आदि आकर सुन्दर प्रभाव संसार में फैलते हैं इसको मैं भारत के हित का एक बहुत बड़ा और सच्चा साधन समझता हूँ। परन्तु जिस प्रकार देशहितैषिता और जाति आदि के हित का प्रचार प्रायः आज कल होता है उससे और बातों के अतिरिक्त देश को भी लाभ कम और हानि अधिक पहुँचती है। कारण यह है कि हमारे कितने बेचारे भोले-भाले भाई भारत का प्रेम लोगों के हृदयों में उत्पन्न

करने के यत्न में भारत का प्रेम तो कम परन्तु स्वार्थ-संकीर्णता और बहुत से अन्य देश वालों और विशेषतया इँगलैंड और यूरप आदि वालों की ओर से ईर्ष्या और द्वेष का भाव अधिक उत्पन्न कर देते हैं। और यह ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि शान्ति और आनन्द का खून कर देती है और इस शान्ति और आनन्द के कारण जो हमको बल, बुद्धि, तेज आदि की प्राप्ति होती कि जिनसे पूर्वोक्त प्रकार सारे संसार के हित के साथ भारत-माता का भी हित हो सकता था उससे हमको वह अग्नि वंचित ही नहीं कर देती किन्तु अशान्ति आदि से उन गुणों का नाश होने के कारण हमको एक बड़े दर्जे तक अवगुण फैलाने वाले और भारतमाता को भी हानि पहुँचाने वाले बना देती है और भारतमाता इन देशहितैषियों के विषय में यह ही कहती हुई प्रतीत होती है कि God save me from my friends अर्थात् "ईश्वर मेरे मित्रों से मेरी रक्षा करें।" किसी एक मनुष्य को या किसी मनुष्यों के समूह को इस देश में या उस देश में यदि किसी एक या दूसरे प्रकार के सुख की प्राप्ति हो रही है तो वह उनके कर्म्मों का फल है। हमको उनकी ओर से ईर्ष्या और द्वेष आदि का भाव रखने के स्थान में अपने कर्म्मों के सुधार का ध्यान रखना उचित है और इस कर्म्मों के सुधार में उनसे प्रेम-भाव रखना भी सम्मिलित है।

एक और बात जो मैं इस प्रसंग में कहा करता हूँ यह है कि हम भारतमाता के बड़े कुपुत्र होंगे और वह माता हमसे कदापि प्रसन्न नहीं हो सकती यदि हम उसके भानजों अर्थात् इँगलैंड, फ्रांस, रूम, रूस, काबुल आदि उसकी बहिनों के पुत्रों को कमसे कम उतनी ही बल्कि उससे भी अधिक प्रेम की दृष्टि से देखने की इच्छा न करें जिसे कि भारत के पुत्रों को देखते हैं। देखिये तो सही कैसे कैसे आदर्श हमारे सामने उपस्थित हैं। ज़रा विचारियेगा कि किस प्रकार महाराज रामचन्द्र और

भरत जी कितने बड़े राज्य को मानों फुट-बाल बना कर ठोकर मार मार कर वे उनकी ओर और वे उनकी ओर फेंकते थे और इससे कैसी उदारता और स्वर्गीय आनन्द का परिचय मिलता है यह हृदय ही जान सकता है। महाराज रामचन्द्र जी ने यह सुन कर कि उनके लिए वनवास और भरतजी के लिए राज्य मिलना निश्चय हुआ है कहा था :—

"भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू ।
विधि सब विधि मोहि सन्मुख आजू" ।।

ओ हो ! अपना राज्य छिन जाने में और वह राज्य सौतेली माता के पुत्र को और उन अभूत पूर्व दशाओं में दिये जाने में महाराज राम चन्द्र को अपना कोई अकाज या हानि नज़र ही नहीं आती वल्कि उसके लिए यह कह कर अपना आनन्द और प्रसन्नता के भाव प्रकाश करते हैं कि "विधि सब विधि मोहि सन्मुख आजू" वाह ! वाह ! धन्य हो महाराज तुम, और धन्य है वह माता जिसने तुमको पैदा किया। सच्चा आनन्द आपही जैसे महाभाग प्राप्त कर सकते हैं। फिर किस प्रकार कुन्ती के सुपुत्र महाराज युधिष्ठिर ने यक्ष से अपनी माता के पुत्रों को माँगने के स्थान में माद्रि के पुत्रों को माँगा था। ओह, हमारे यहाँ इस प्रकार की उदारता थी कि जिसके दृष्टान्त प्रत्येक धर्म्म के महापुरुषों में अनेकानेक विद्यमान हैं और कहाँ यह आजकल की स्वार्थ और द्वेषयुक्त भारतभक्ति।

इस विषय में यह भी एक बात विचारने योग्य है कि उन अन्य देश निवासियों को ग़ैर समझना भी हमारे हिन्दू धर्म्म के सिद्धांतों के विरुद्ध है। आपको क्या मालूम है कि उन लोगों में से कौन ऐसे नहीं हैं कि जो पहले जन्मों में भारतवासी थे या शायद आपके सहोदर भाई या और सम्बन्धी थे। आज दूसरे देश में पैदा होने और रहने के कारण और वहाँ के संस्कार उनमें आ जाने के कारण आप उनको गैर

समझने का हक़ नहीं रखते हैं। इससे भी अधिक ये लोग यदि तुम्हारी भारत-माता के पुत्र नहीं हैं तो क्या यह तुम्हारी परम माता जगन्माता ईश्वर के भी पुत्र नहीं हैं ? और क्या आपकी हिम्मत है कि आप ईश्वर के पुत्रों से द्वेष रक्खें ? इस विषय में कुछ पहले भी प्रेम और एकता के सम्बन्ध में मैंने निवेदन किया है। और मेरी यह हार्दिक और अत्यन्त विनीत इच्छा है कि एकार्थ वचन दुबारा पढ़ा जाय। वेद भगवान और अन्य पुस्तकों से कैसी सुन्दर शिक्षा हमको मिलती है। एक मंत्र है "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे" जिसका अर्थ है सबको मित्र की प्रेम भरी आखेँ से देखना चाहिये और "द्यौः शान्तिः" इस मंत्र में कैसे सारे संसार में शान्ति और आनन्द के होने की इच्छा रखने की शिक्षा की गई है और मित्रो, ये सब बातें हमारे अमल करने और लाभ उठाने के लिए हैं।

इन अनमोल रत्नों से लाभ न उठाना कैसे दुर्भाग्य की बात है ? आइये मित्रगण, आप और हम यह लाभ उठावें और वेद और शास्त्र आदि धर्म्म-पुस्तकों के रचयिताओं के परिश्रमों और उपकारों को सफल करें और मर्यादा पुरुषोत्तमों के परिश्रमों को व्यर्थ न जाने दें। ईश्वर ने उनको हमारे लिए संसार में भेजा और उनकी आत्माएँ बड़ी संतप्त होंगी यदि हम उनकी शिक्षाओं और उनके जीवनों आदि से वह महान् लाभ और आनन्द न उठावें कि जो उनका उद्देश्य था। मैं बतला चुका हूँ कि यह काम संसार के सारे कामों से सुगम और हर्ष-दायक है और क्या फिर भी हम उससे लाभ उठा कर अपने प्यारे पुरुषाओं के परिश्रमों को सफल और उनकी आत्माओं को सन्तुष्ट न करें ? जो पुरुष लाभ उठाते हैं, वे धन्य हैं और जिन्होंने लाभ उठाया है, वे धन्य हैं।

आपके चरणों की कृपा से और आपके आशीर्वाद से मैं लाभ

उठा रहा हूँ। और यदि मुझ जैसा महापापी, महाक्षुद्र, महामूर्ख मनुष्य इस प्रकार का लाभ उठा सकता है तो किसी के लिए कोई बहाना बाक़ी नहीं रहता है। What man has done man can do अर्थात् जो काम किसी मनुष्य ने कर लिया है उसको दूसरे भी कर सकते हैं और What a man like me has done can most assuredly be done by each and all अर्थात् जो काम मुझ जैसे आदमी ने कर लिया है उसको निश्चय हर एक कोई कर सकता है। मेरा आदर्श दुनिया के सामने एक बड़ा और अमूल्य आदर्श है। महाराजा रामचन्द्र आदि मर्यादा पुरुषोत्तमों के विषय में तो लोग यह कह कर कन्धा डाल देते हैं कि उनके अन्दर बड़े बड़े गुण थे परन्तु मुझको देख कर यह बहाना भी नहीं चल सकता है।

यह भी याद रहे कि हम प्यारी भारतमाता के भी सुपुत्र और उसके गौरव के कारण तभी हो सकते हैं जब हम अन्य देश वालों से और इससे भी अधिक जब हम अपने द्वेषियों और हानि करने वालों से प्रेम न रख सकें तो कम से कम प्रेम रखने की इच्छा तो रक्खें। तभी प्यारो! हम ईश्वर के भी सुयोग्य पुत्र और उसके गौरव के कारण हो सकते हैं। तभी हम ईश्वर के आशीर्वाद के अधिकारी हो सकते हैं और तभी और कदापि नहीं केवल तभी हम अपनी और अपने देश आदि की भलाई और लाभ की जिसमें धन की प्राप्ति भी सम्मिलित है आशा कर सकते हैं। यहाँ कुछ महा-पुरुषों के अमूल्य वचन उद्धृत कर कविता सुना देना उचित प्रतीत होता है:—

स्वामीराम का वचन।

ऐ उदू ऐंठले बिगड़ तनले।
सख़्त कहदे कि सुस्तही कहले॥

मुझे भी इन तेरी बातों से रोक थाम नहीं ।
ज़िगर में धाम न करलूँ तो राम नाम नहीं ॥

एक दूसरे कवि का वचन है ।

प्रभू जी ने यह फर्माया है अक्सर ।
ये मख़लूक़ हुक्म आया है अक्सर ।
कि अपनों से मोहब्बत की तो क्या की ।
नहीं से मेहरो उल्फत की तो क्या की ।
जो दुश्मन पर करो चश्मे इनायात ।
तो हाँ यह काबिले तारीफ हो बात ।
जो तुमको देखते हों दुश्मनी से ।
दुआ उनके लिए माँगो खुशी से ।
जिन्हें है तुमसे अज़हद बुग्ज़ व कीना ।
रखो उनकी तरफ से साफ़ सीना ।

इसी कविने इसी कविता के आरम्भ में यह भी कहा है और वह भी पढ़ा जाने योग्य है—

मोहब्बत का अजब ताज़ा शजर है ।
कि जिस्का पत्ता पत्ता सब्ज तर है ।
मोहब्बत आदमियत का है ज़ौहर ।
मोहब्बत का अजब रोशन है गोहर ।
मोहब्बत ही बहारे जिन्दगी है ।
मोहब्बत पर मदारे जिन्दगी है ।
मोहब्बत है शराफत का तरीक़ा ।
मोहब्बत करते हैं अहले सलीक़ा ।
मोहब्बत से है सब कारे ज़माना ।
मोहब्बत से है सारा कार खाना ।

सच है भलों से और अपनों से भलाई करना कोई भी प्रशंसा की बात नही हैं। ईश्वर करे कि प्रथम तो जगत में बुरा कोई रहे ही नहीं और जो कोई हो भी तो हम उससे भलाई और प्रेम ही करें।

मैं यहां फिर कहना चाहता हूँ कि क्या भारत के अतिरिक्त अन्य भूमियों के पुत्र ईश्वर के पुत्र नहीं हैं ? और क्या उनसे द्वेष आदि रख कर हम किसी प्रकार भी भलाई की आशा रखने के अधिकारी हो सकते हैं ?

अपने देश का भला चाहते हो तो अन्य देश वालों का भला पहले चाहो। साथही अपने हिन्दू भाइयों का भला चाहते हो तो अन्य मत वालों का भला पहिले चाहो। चाहे उनकी ओर से कैसा ही और कितनाही अत्याचार तुम्हारे साथ हो, कोई अधर्म्म करे और नरक के रास्ते जावे तो वह तुम्हारे लिए अधर्म्मी बनने और नरकगामी बनने की कदापि काफी कारण नहीं है। कोई सौ बार तुम्हारी थाली में मछली खावे तो भी प्यारो तुम उनकी थाली में अमृत ही खाना। ऐसा करोगे तो तुम धन्य हो ! तुम धन्य हो ! यह धर्म्म है और केवल हिन्दू ही धर्म्म की नहीं किन्तु सारे ही धर्म्मों की शिक्षा यह है कि "यतो धर्म्मस्ततो जयः" अर्थात् जहाँ धर्म्म होगा वहाँ ही जय और सफलता होगी। धर्म्म का संचय करो और बस काम हो गया। धर्म्म का यदि तुम संचय करते हो तो चाहे तुमको आज पिछले कर्म्मों के कारण अपने किसी मन्दिर के तोड़े जाने या तुम्हारी रामलीला आदि में विघ्न होने या किसी सभा आदि के बंद किये जाने, तुम को भजन आदि के गाने से रोके जाने, गौओं के विषय में कोई दुखःदायी बात होते देखने, किसी अवसर पर तुम्हारा कोई बड़, पीपल आदि वृक्षों के कि जिनकी शाखाओं को तुम आप भी अपने हाथियों के चारे के लिये कटवा दिया करते हो कटने इत्यादि का कष्ट देखना पड़े परन्तु "माशुचः" अर्थात् मत घबड़ाओ

और प्रसन्न रहो। प्रथम तो जो बात तुम मन्दिर या रामलीला या सभा-समाज या गोरक्षा आदि से प्राप्त करना चाहते हो उसको कितने दर्जे, ओह! कितने बड़े दर्जे तुम इसी समय प्राप्त कर रहे हो और धर्म्म को यदि छोड़ दिया तो मन्दिर और रामलीला आदि से ही तुमको कौनसे लड्डू मिल जायँगे। और आज पक्षपात और द्वेष आदि के साथ किसी पक्षपाती हिन्दू अफसर के ज़माने में तुमने कुछ सफलता प्राप्त कर भी ली तो फिर कल क्या? धर्म्म की जगह अधर्म्म से काम लिया गया तो प्रथम तो हम पाप के भागी हुए और दूसरे बल, बुद्धि, तेज आदि का नाश होने से रहे-सहे मन्दिरों आदि की खैर कब तक मनाओगे? अब यदि तुम्हारा कोई मन्दिर तोड़ा गया है तो कुछ परवाह न करो, मैदान में एक पत्थर रख कर पूजा कर लो। अपने शास्त्रों की शिक्षा पर विचार करोगे तो तुमको निश्चय हो जायगा कि इसका माहात्म्य भी किसी प्रकार कम नहीं है। सुनोः—

"तत्रैव गंगा यमुना च वेणी
गोदावरी सिन्धु सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसंति तत्र
यत्राच्युतोदारकथाप्रसंगः" ॥ १ ॥

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मट्टी का लिंग बना कर भी तो तुम पूज सकते हो। मन्दिर यदि तुम्हारा तोड़ा जाय और तुम धर्मभाव से काम लो तो न जाने कितने मन्दिरों के बनवाने को तुम समर्थ हो जाओगे। मुसलमान लोग नमाज़ के समय अकसर कहीं भी कपड़ा बिछा कर नमाज़ पढ़ लेते हैं तो क्या वे ख़ुदा को कम प्यारे होते हैं। बेफायदा मन्दिरों और मसजिदों आदि पर लोग झगड़े कर करके पाप के भागी होते हैं।

केवल हृदय-मन्दिर की रक्षा करो, उसमें कोई ऐसा भाव न आने दो कि जिससे इस मन्दिर में से, उन देवताओं के देवता महादेव-परमात्मा को धक्के मिल जावें और उसकी जो मूर्ति हृदय-मन्दिर में है उसको तोड़ कर फेंक देने का महा-पाप तुम्हारे ऊपर लग जावे। अर्थात् जिसके कारण परमात्मा का निवास हृदय-मन्दिर में अनुभव होना बन्द हो जावे—और परमात्मा का निवास हृदय-मन्दिर में तभी और तब तक अनुभव हो सकता है कि जब और जब तक यथाशक्ति राग द्वेष, कपट, पक्षपात आदि से बचने की इच्छा मन में है, इसमें किसी प्रकार के यत्न की आवश्यकता नहीं। इच्छा मात्र काफी है और यह कोई भी कठिन और अनहोनी बात नहीं है। हम लोग एक वचन कहा करते हैं और वह यह है अर्थात् "पिताजी सबका भला हो, हमारे दुश्मनों का और द्वेषियों का भला पहले हो और मित्रों का पीछे हो और हमारा चाहे न हो" और इससे हमको ईश्वर की परम प्रसन्नता का अनुभव होता है और अपना भला तत्काल होने और हृदय-मन्दिर में परमदेव परमात्मा के निवास और अपने सब मनोरथों की सिद्धि के निश्चय का अनुभव भी होने लगता है। मित्रगण केवल द्वेष आदि के त्याग की इच्छामात्र से और इसमें भी कठिनता प्रतीत हो तो जिस समय द्वेष आदि का हृदय पर आक्रमण हो उसी समय ईश्वर के स्मरणमात्र से या "पिताजी सब आपके भक्त बन जावें" कह देने मात्र से उस परमोत्तम दशा को आप प्राप्त कर सकते हैं। सम्भव है कि पिछले कर्म्मों के कारण आनन्द तुरन्त न आवे परन्तु विशेषत: कारण-कार्य्य के नियम को विचार कर लाभ में तो सन्देह हो ही नहीं सकता है और इस लाभ के निश्चय से आनन्द भी आही जाता है और द्वेष, कपट और सब प्रकार की बुराई आदि दूर होकर प्रेम—वह मधुर प्रेम— वह स्वर्ग का मज़ा चखाने वाला प्रेम— और आगे को महान्

लाभ पहुँचानेवाला प्रेम—मन में स्थान कर लेता है। अरे! आओ और इस मज़े को चक्खो और उसके महान् लाभ को प्राप्त करो, उससे क्यों वंचित रहते हो जब कि वह ऐसी सुगमता से प्राप्त हो सकता है? दूसरे धर्म्म के संचय करने से या आनन्द से जो तुम्हारे अन्दर बल, बुद्धि, तेज आदि शनैः शनैः बढ़ते जायँगे उनके कारण आगे को शीघ्र ही किसी को तुम्हारे मन्दिर आदि को तोड़ने और तुम्हारे विरुद्ध कोई काम करने का साहस ही नहीं होगा और इससे भी अधिक तुम्हारा प्रेम और द्वेष का अभाव दूसरों को ऐसा आकर्षित कर लेगा कि तुम्हें दुःख पहुँचाने वाली बातें करने का विचारमात्र तक उनके हृदयों में नहीं आवेगा बल्कि तुमको सुख पहुँचाने में लोग सुख मानेंगे और तुम्हारे गोपालन आदि के और और धर्म्मभाव उन पर प्रभाव डालेंगे और वे असली पहलू के लिहाज़ से सारी बातों में तुम्हारे मत पर आ जावेंगे। हिन्दुओं को अगर अपने मन्दिरों और गौओं की ओर अपने धर्म्म की रक्षा की पर्वाह है और यदि वह ऐसी सुगमता से हो सकती है तो उसके न करने को क्या आप महापाप नहीं कहेंगे?

इस सम्बन्ध में एक बात प्रायः कही जाया करती है कि जिसके विषय में मुझको अपना विचार प्रकट करना आवश्यक प्रतीत होता है। लोग कहा करते हैं—"Charity begins at home." अर्थात् "उदारता घर में आरम्भ होनी चाहिये"। और यह ठीक है जो कोई अपने घर में और कुटुम्ब में ही प्रेम का व्यवहार नहीं करता उससे अन्य लोग क्या आशा कर सकते हैं? सब उसको बुरा कहेंगे और सब उसको घृणा की दृष्टि से देखेंगे। साधारणतया कहा जासकता है कि अपने बाल-बच्चों का अपने देश आदि का हक़ दूसरों को देना पाप है। स्वदेशी वस्तुओं को काम में लाना हमारा धर्म्म है, परन्तु किसी से द्वेष भाव आदि का रखना उचित नहीं और

सर्वदा प्रेम ही रखना उचित है। मैं अपने विषय में कह चुका हूँ कि मैं एक बहुत बड़ा मूर्ख आदमी हूँ और राजनीतिज्ञ (Politician) होने का दावा करना मेरे लिए एक बहुत ही बेहूदा बात है और भारत के उद्धार के विषय में जो एक बड़ा महत्त्व-पूर्ण प्रश्न भारत के राजनीतिज्ञ महाशयों के सामने उपस्थित है। मैं उसे हल करने का सांसारिक विचार से कोई उपाय नहीं बतला सकता हूँ, परन्तु प्रथम तो मेरी राय में सारे ही देशों के विषय में यह बात है कि कोई पालिसी या नीति जिसमें द्वेष, पक्षपात या कपट अथवा किसी रूप में भी अधर्म्म मिला हुआ होगा, कदापि सफलता की अधिकारिणी नहीं हो सकती। सफलता यदि उसमें कहीं दीख पड़ती हो तो वह उस अधर्म्मयुक्त नीति का परिणाम नहीं किन्तु पूर्व-कर्म्मों का फल है या बासी भोजन है कि जो मानो पहिला तैयार किया हुआ है। या यों कहिये कि जितना उस नीति में धर्म्म मिला हुआ होगा उतनी ही वह सफलता की अधिकारिणी हो सकती है, उससे अधिक नहीं। दूसरे हमको चाहिये कि हम हिदायत के लिए उस बुद्धि-सागर के चरणों में तुरन्त पहुँच जावें जिसने गायत्री मंत्र आदि द्वारा हमको आज्ञा दी है कि हम उससे अपनी बुद्धियों के विकसित होने के लिए उसके पवित्र चरणों में अनुनय प्रकट करने लगें। आप से मैं अपने अनुभव से भी कहता हूँ कि निश्चय ही वह हमारी बुद्धियों को विकसित करता है, केवल हमारे संकल्प शुद्ध होने उचित हैं और यदि हम उसकी प्रेरणा के अनुसार काम करेंगे तो चाहे उन्हीं पिछले कर्म्मों के कारण ऊपर से हानि भी होती दिखाई दे, परन्तु वास्तव में हमको पूर्वोक्त महान् लाभ तो होहीगा और यह विचार हमको हमारी जिम्मेदारियों से कितना हल्का कर देता है और कैसा आनन्द-दायक है कि हमने परमात्मा की प्रेरणा के अनुसार कार्य किया और गीता के:— "कर्मण्येवाधिकारस्ते

मा फलेषु कदाचन" इस वचन के अनुसार हमें केवल कर्म्म करने का अधिकार है और उसके फलों से कुछ मतलब नहीं बल्कि यह समझना चाहिये कि जब हम अपना काम कर चुके हैं तो जिसका काम कर्म का फल देना है वह अवश्य अपने समय पर और अपने ढंग पर सुन्दर से सुन्दर फल देगा और हमसे न्यूनता हो जाना तो सम्भव है परन्तु फल देने वाले में कोई न्यूनता नहीं और यह बात तो ऊपरी फलों के विषय में है। आन्तरिक फल अर्थात् उसकी प्रसन्नता और आशीर्वाद आदि महान् फल तो हमको तुरन्तही मिलजाते हैं और अपने मनोरथों की सिद्धि का निश्चय होजाता है और इसके अतिरिक्त हमको चाहिये क्या ? यही नीति सच्ची सफलता की नीति है । इसके अतिरिक्त मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि लोग कहा करते हैं कि Honesty is the best policy "अर्थात् सत्यपरायणता ही उत्तम नीति है", यह निस्संदेह बहुतही उत्तम बात है परन्तु शायद असली पहलू को विचार कर राजनीति की हर प्रकार की बातों को सोच कर यह कहना और भी उत्तम होगा कि "Trust is the best policy" अर्थात् "विश्वास या ईमान सबसे उत्तम नीति है" । जब कभी कोई मनुष्य नीति के विरुद्ध या कोई भी बुरा काम करता है तो उसको बेईमान या विश्वासघातक कहा करते हैं, और जो नीति के अनुसार अच्छे काम करता है उसको ईमानदार या विश्वासी कहते हैं और यह बहुत ही ठीक बात है। जब मनुष्य के अन्दर विश्वास या ईमान नहीं होता तभी उससे वे काम हो सकते हैं जिनको लोग खोटे काम या पाप कहते हैं । इसका कारण यह नहीं है कि विश्वास की दशा में उसको इस बात का भय होता है कि ईश्वर उसको देखता है । विश्वासी को ईश्वर का भय नहीं होता है । जैसे कोई लड़का औरों के भय से अपनी माता की शरण लेता है, वैसे ही विश्वासी भी दूसरों के भय का और दुःखों का बल्कि पाप सन्ताप

और अनुताप का भी सताया हुआ उस अपनी परममाता की शरण लेता है कि जो उसको शरण देने के लिए मानो बुला रही है और जो अपना सर्वस्व उसके अर्पण करने के लिए या उसको यह निश्चय करा देने के लिए अकुला रही है कि उसका सर्वस्व उसके बच्चों का है :—

चार पदारथ पुत्र हित, लिये खड़े अकुलात।
ज्यों सुत को भोजन लिये, करत चिरौरी मात॥

उसके प्रेम को अनुभव करके एक महापुरुष को प्रतीत हुआ कि ईश्वर उससे कह रहा है कि "प्यारे! यदि मैं तुझको न पैदा करता तो ज़मीन और आसमान को ही न पैदा करता, मानो यह सब तेरे ही लिए बनाया है और प्यारो! मुझको और तुमको हक़ है कि हम समझें कि ईश्वर हम से कहता है कि "उस महापुरुष तक को और सारे ही महापुरुषों को तुम्हारे लिए बनाया है क्योंकि उनके विना तुम्हारा गुज़ारा नहीं होसकता था"। शरण के विषय में देखिए गीता में लिखा है:—

सर्वधर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

उसकी शरण के विषय में किसी विश्वासी ने अपराधक्षमापन स्तोत्र के पहिले श्लोक में यह अंश कैसा अच्छा कहा है:—

अर्थात् माताजी! मैं "परं जाने मातस्त्वदनुशरणम् क्लेशहरणम्।" यह जानता हूँ कि आपकी शरण क्लेश की हरने वाली और सब सुखों की देने वाली है। उसकी शरण में आने को बहुत लोग कठिन काम समझते हैं कि जो एक भूल की बात है। यदि कोई मनुष्य किसी राजा के मकान में या क़िले में भी आजावे तो वह राजा की शरण में और

सुरक्षित समझा जाता है। परन्तु जो राजा के सामने ही आजावे और उससे प्रेम भरी बात चीत करता हुआ पाया जावे तो वह शरण से और रक्षा की दशा से भी ऊँची दशा में समझा जाता है। और जो कोई ईश्वर से बात करता हुआ और उसको प्रसन्न करता हुआ पाया जावे तो उसका तो कहना ही क्या है। और पहले भले प्रकार सिद्ध किया गया है कि यह अति सुगम और परम हर्षदायक कार्य्य है। मतलब कहने का यह है कि ईश्वर के पास आने में किसी को भय करने की आवश्यकता नहीं है, वहाँ जाकर तो भय का नाश और आनन्द की प्राप्ति होती है। और "मा शुचः" की ही मधुर वाणी विचार के कानों में आती हुई प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त भय या लोभ के कारण "बुराई" से बचना और भलाई करना बुराई ही नहीं है, बल्कि स्वार्थ और पाप की बात है। निष्काम और स्वार्थ-रहित कर्म ही भले कर्म कहलाते हैं। विश्वासी के दिल में तो धर्म का उत्साह होता है और जैसा कि प्रातः-स्मरण के

लोकेश चैतन्यमयाधिदेव मांगल्यविष्णो भवदाज्ञयैव ।
हिताय लोकस्य तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये ॥

इस-श्लोक में भाव है वह सब काम अपने प्यारे पिता की आज्ञा पालन के भाव और सारे संसार के हित के लिए और सारे संसार का हित होने का विश्वास रख कर प्रेम और आनन्द में भर कर ईश्वर की शाबाशी की, आकाशवाणी अपने हृदयाकाश में से आती हुई सुनता करता है, ईश्वर पर विश्वास रख कर उसके सब भय दूर हो जाते हैं, और उसको कोई लालच या कामना या तृष्णा नहीं रहती है। ईश्वर पर विश्वास लाते ही वह अपने आपको जीवन-मुक्त ही नहीं समझने लगता, किन्तु अपने ऊपर मुक्ति के भण्डारों

को न्योछावर होते पाने लगता है; और मुक्ति पहले और भक्ति पीछे की कहावत उसको सच्ची प्रतीत होने लगती है। उसको सब ओर मंगल ही मंगल प्रतीत होते हैं और सारी इच्छाएँ पूर्ण हुईं अनुभव होने लगती हैं और कोई चीज़ चाहने को बाक़ी नहीं रहती है, इच्छा के मानों पंख कट जाते हैं।

शारीरिक और सांसारिक दुःख, हानि, दरिद्रता आदि यदि पिछले कर्मों के कारण उसको होते हैं तो वह उनको ईश्वर की ओर से आये हुए समझ कर एक सुयोग्य और आज्ञाकारी सुशील बालक के समान कम से कम कोशिश करता है कि उसमें दुःख न मानें बल्कि हर्ष माने और इस कोशिश में भी यदि सफलता न हो तो इस असफलता को भी अपने पिता की इच्छा के अनुकूल समझ कर उसमें भी हर्ष मानने की कोशिश करे। यदि पूजा, ध्यान आदि में भी चित्त एकाग्र होने का आनन्द न आवे तो उसमें भी आनन्द मानने की कोशिश करे। जिस परम पिता से उसको ऐसी बातें मिलती हैं उसके आगे तीन लोक का राज्य और कल्पवृक्ष भी तुच्छ है। इसकी कृपा से हम क्षण मात्र में ऐसे बन जाते हैं कि वह हमारा ऋणी और कृतज्ञ प्रतीत होने लगता है और हमारे गुणों को वह भी वर्णन नहीं कर सकता है। उसकी कृपा से हमें ऐसी ऐसी वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं कि हम उन्हें ख़्याल में भी नहीं ला सकते। यदि उसकी ओर से कोई कितनी बड़ी भी, विपरीत दशा हम पर आवे और वह भी बिना हमारे कर्मों के कारण किसी बदला लेने या ज़िद या शत्रुता या घृणा आदि के भाव से न आवे किन्तु हमारे ही और हमारे वसुधारूपी कुटम्ब के परम मंगल के लिए अनन्त प्रेम भाव से कार्य्य करते हुए आवे तो समझ लो कि उसके बिना यह मंगल हो सकता तो निश्चय वह दशा हम पर कदापि न आती और, जैसा कि पहले सिद्ध किया गया है, इस विपरीत

दशा से हमारे मंगल में, हमारे परम लाभ में, हमारे जीवन के और हमारे अस्तित्व के वास्तविक उद्देश में क्षणमात्र को भी कोई अन्तर नहीं आ सकता और वह हमारे मंगल की उतनीही बड़ी कारण समझी जाती है और है जितनी कि कोई भी और दशा जिसको सुन्दर कहा जा सके हो सकती है। मानो दुःख और सुख, हानि और लाभ आदि सुन्दर रसोइये और बढ़िया नश्तर लगाने वाले डाक्टर या पढ़ाने वाले (पढ़ने से बच्चों को प्रायः दुःख होता ही है) अध्यापक के समान पिताजी ने हमारे परम हित के लिए हमारे सेवक नियत किये हैं, तो क्या हम ऐसे कृतघ्न और बुद्धिहीन हो जायँगे कि परम कृतज्ञता से प्लावित होने के बदले हम शिकायत करने बैठें और दुःख मानें? हमारी बुद्धियाँ बहुत तुच्छ हैं और निस्सन्देह हम अपने भले की बात उसकी अपेक्षा कुछ भी नहीं विचार सकते हैं (देखो कहानी स्वामी रामतीर्थजी का इक़रारनामा)। प्यारो मेरे मन की पूछो तो दुःख और विपरीत दशा के लिए हमको बहुत अधिक कृतज्ञ होना चाहिए क्योंकि मेरी समझ में उस दशा के भेजने में उस परमप्रेमी पिता को एक प्रकार से बहुत अधिक दुःख होता है कि जितना हमको उस दशा से होता है और पिता जी के भारी प्रेम का प्रकाश हमको दुःख देने ही में होता है (देखो कहानी डाक्टर केम्बल साहब की)। इसके अतिरिक्त यदि कोई मुझको पचास करोड़ों अशर्फ़ियाँ और करोड़ों अमूल्य रत्न देवे और एक कौड़ी मुझसे ले लेवे और मैं उसमें दुःख मानूँ और शिकायत करने लगूँ या दुःख न मानने की कोशिश न करूं तो कितनी बड़ी कृतघ्नता का दोषी मैं बना जाता हूँ और साथ ही अपने लाभ और आनन्द का खून करता हुआ भी कुछ कुछ प्रतीत होता हूँ। बचावे ईश्वर तुम सब को ऐसी कृतघ्नता से, ईश्वर के विषय में हम पर कृतघ्नता का दोष बहुत अधिक लगता है। एक फारसी के कवि ने क्या ही अच्छा कहा है :—

हमा कारे तो मेहरो परवर दनस्त । हुमा करे माँ शुक्र तो कर दनस्त ॥

अर्थात् प्यारे पिता तेरे पास कोई भी और काम सिवा हमारे मंगल करने के नहीं है और हमारा भी सिवा तेरा धन्यवाद करने या आनन्दित रहने के और कोई काम नहीं है कि जिस आनन्द से ईश्वर के सारे कुटुम्ब का मंगल होता है और उस पर बड़ा अहसान होता है। और भी एकाध वचन यहाँ सुनाना चाहता हूँ :—

Yes, God is paid when man receives : T'enjoy is to obey.

अर्थात् ईश्वर के दाम वसूल हो जाते हैं जब आदमी उसके सब पदार्थों को ले लेता है ~~और हृदय में उसकी भक्ति करता है।~~ आनन्द मानना ही आज्ञापालन करना है।

चार पदारथ पुत्र हित, लियें खड़े अकुलात ।
ज्यों सुत को भोजन लियें, करत चिरौरी मात ॥

भूत-भावन भगवान् शम्भु की स्तुति का एक श्लोक पहले पढ़ा जा चुका है उसका एक अंश है " पूजा ते विषयोपभोगरचना " अर्थात् आनन्द लेना ही तेरी पूजा है। और सुनिये :—

कार साज़े माँ बफिक्रे कारेमाँ । फिक्रे मादर करेमा आज़ारेमा ॥

" हमारा कारसाज हमारी बिगड़ी का बनाने वाला (देखो महारानी विक्टोरिया की कहानी) हमारे काम की फ़िक्र में हैं, हमको स्वयं अपने काम की फिक्र करना बे फ़ायदा है और हमारा दुःख मोल लेना है " (देखो कहानी प्यास वाले जाट की) । ईश्वर अपने प्रत्येक बच्चे से कहता है :—

होली ।

मोको तो तेरो दरश भुलाया
दर्श दिखाय मोहित मोहि कीन्हा । अपना रूप दिखाया ।

अब कहाँ जाऊँ पड़ा दर तेरे यही मेरे मन भाया ।
ध्यान अब तुमसे लगाया ॥ मोको ॥ १ ॥
देखत नयन तृप्त नहीं होवें पल पल रूप सवाया ।
मुझसा प्रेमी और यह दर्शन अहा हा पुत्र तेरी दाया ।
दया का हाथ बढ़ाया ॥ मोको ॥ २ ॥

Lord ! is there any hour so sweet,
(Mother),
From blush of morn to evening star
As that which brings me to Thy feet
The hour of prayer ?
No words can tell what sweet relief
Here for my every want I find !
What strength for warfare ; balm for grief
What peace of mind !
Hushed is each doubt, gone every fear ;
My spirit seems in heaven to stay.
And even the persistential tear
Is wiped away.
Lord ! till I reach yon blissful shore,
(Mother)
No privilege so dear shall be,
As thus my inmost soul to pour
In "prayer" to Thee.

अर्थात्-प्रभो (या माता जी) सूर्य के उदय होने से लेकर सायंकाल तारे के उदय होने तक क्या कोई घड़ी ऐसी मधुर है जैसी कि वह घड़ी जो मुझको आपके चरणों में लाकर बिठा देती है :—

शब्द वर्णन नहीं कर सकते कि आपके चरणों में आकर अपनी प्रत्येक आवश्यकता के संबन्ध में मुझे कैसी मधुर तृप्ति प्राप्त होती है । प्रत्येक शंका दूर हो जाती है । प्रत्येक भय भाग जाता है और मेरी आत्मा स्वर्ग में ठहरी हुई प्रतीत होती है । और प्रभो (माता जी) (पापों से) पश्चात्ताप का आँसू तक (माता के सुन्दर प्रेम

के साथ पोंछा जाता है ज़ब तक कि मैं बैतरणी के आनन्द-दायक दूसरे किनारे पर पहुँचूँ । मृत्यु से तात्पर्य्य यह है कि जो विश्वासियों को भयकारी होने के बदले बड़ी प्रिय प्रतीत होती है:—

दोहा ।

जिस मरने से जग डरे मेरे मन आनन्द ।
मरने ही से पाइये पूर्ण परम आनन्द ॥

मृत्यु का विश्वासियों को चाव हुआ करता है । इस विषय में अवसर मिलने पर जुदा लेख प्रकाशित होगा । तब तक कोई अधिकार ऐसा प्रिय प्रतीत नहीं होगा जैसा कि इस प्रकार उपासना द्वारा अपने हृदय या आत्मा को आपके चरणों के आगे मानो ढेर कर देना परमात्मा अपने प्रत्येक बच्चे के विषय में मानो कह रहा है:—

ग़ज़ल ।

मोहन हमारा प्यारा जलवा दिखा रहा है ।
कर बातें मीठी मीठी मनको लुभा रहा है ।
उसके ही नाम की मैं जपता हूँ नित्य माल ।
दुनिया को भक्त मेरा मोहन बना रहा है ।
है हाथ सर पै उसके और ओंभू ज़ुबां पर ।
मंत्र और यंत्र सबही उसमें समा रहा है ।

मानो यह शेर ईश्वर या प्रत्येक स्वर्गवासी या विश्वासी से कह रहा है प्रत्येक मनुष्य के सम्बन्ध में मानो यह—

खूबी को तेरी कोई, अहले नज़र से पूछे ।
हाँ मेरे दिल से पूछे, मेरे जिगर से पूछे ॥

ईश्वर और समस्त स्वर्ग-वासी अर्थात् देवता, ऋषि, पीर, पैग़म्बर आदि प्रत्येक मनुष्य से मानो इस प्रकार सम्बोधन कर रहे हैं ।

गज़ल ।

सुन्दर स्वरूप तुम्हरा कैसा लगे है प्यारा ।
देखे जो एक बारी, शैदाही हो विचारा ।
बरणूं सिफ़त कहाँ तक, वाह वाह शानो शौकत ।
जी चाहता है देखें दिन रात यह नजारा ।
वह मुसकराता चेहरा सनमुख रहे हमारे ।
इसके एवज़ में चाहे सर्वस्व लेलो सारा ।
चारों तरफ़ से तुमको घेरे हुए हैं हम सब ।
छवी निरखें प्यारी प्यारी जै जै का मारें नारा ।
जिन्हें ईश्वर पे निश्चय है और उसको याद करते हैं ।
मुसीबत चाहे जैसी हो वह कब फ़रयाद करते हैं ।
मसल है दुख में इन्साँ प्रभू को याद करते हैं ।
जो हरदम याद करते हैं वह कब फ़रयाद करते हैं ।

इस प्रकार के अनेकानेक विचार विश्वासी के मन में आते हैं। उसको दुनिया के सुखों आदि की परवाह ही नहीं रहती। जैसे किसी करोड़पती की कोई कौड़ी खो जाय, तो उसको शोक नहीं होता है, वैसा ही उसका हाल है।

"सुख के सिरपर सिल पड़ें जो हरि को बिसरायें ।
बलिहारी उस दुख की जो हरि चरणन में लायें" ॥

इस दोहे के और अंग्रेज़ी के इस अनमोल भजन के अनुसार कि—

If pains afflict and wrongs oppress,
If cares distract or fears dismay:
If guilt deject, if sins distress;
The remedy is before thee—**pray.**

जिनका अर्थ है कि अगर तुझको दर्द सताते हैं और अपने या पराये झूठे या सच्चे, दोष लगाते हैं, अगर तुझको चिन्ताएँ उद्विग्न करती हैं, या भय तुझको डराते हैं, अगर (पिछले) पापों के कारण तेरा दिल गिरा हुआ है, या (आगे को या अब) पापों से तू दुःख मानता है तो इलाज तेरे पास है "ईश्वर के चरणों में पहुँच जा" ऐसे वचनों के अनुसार दुःख या विपरीत दशा के आते ही विश्वासी कुछ ऐसे शब्द कहता हुआ कि "पिताजी सब आपके भक्त बन जावें" पिताजी के चरणों में पहुँच जाता है कि जहाँ उसको पूर्वोक्त प्रकार परिपूर्णता का और परम आनन्द का निवास अनुभव नहीं तो प्रतीत तो अवश्य होने लगता है "All fulness dwells in Him" "समस्त परिपूर्णता उसमें निवास करती है" जिसका विचारमात्र प्राय: दुख को भुला कर उसके लिए ~~अपने~~ परम सुख का अनुभव कराने वाला हो जाता है । वह केवल अपने पैदायशी हक़ या पुत्र होने के कारण ईश्वर की सारी विभूति का मालिक समझता है, बल्कि जैसा कि श्रीस्वामी प्रकाशानन्द जी की "अमृतवर्षा" नामक पुस्तक में लिखा है—उसको मुक्ति के और परम सुख के भंडार अपने ऊपर न्योछावर होते प्रतीत होते हैं । और जैसा कि इस पूर्वकथित:—

"महादेवमहादेव महादेवेति यो वदेत् ।
एकेन मुक्तिमाप्नोति द्वाभ्याम् शंभू ऋणी भवेत् ॥"

इस श्लोक में भाव है वह अपने एक एक वचन और एक एक काम के द्वारा ईश्वर को अपना ऋणी अनुभव करता है । या यों कहो कि उस गोस्वामीजी वाली प्रश्नोत्तरी और अनेक वचनों के अनुसार उसको अनुभव होता है कि मानो परमात्मा उसको निश्चय करा रहा है कि वह उसका ऋणी हो गया है । इस प्रकार विश्वास या ईमान की

दशा में वह कभी और कदापि खोटे काम नहीं कर सकता है उस दशा में उससे सुन्दर ही काम होंगे। खोटे काम करने से जो लाभ समझा जा सकता है उससे लाखों गुना लाभ विश्वासी को उन कामों के त्याग में और अच्छे काम करने में प्राप्त हुआ प्रतीत होता है। अच्छे कामों से यह नहीं कि कोई छोटा-मोटा सुख इस लोक या परलोक में विश्वासी को प्राप्त होने की आशा होती है। वही ईश्वर की प्रसन्नता आदि महान् लाभ उन कामों से उसको प्राप्त हुए प्रतीत होते हैं। और उसको खोटे काम करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती, बल्कि खोटे काम करने में उसको अपनी बड़ी हानि दीख पड़ती है और अपने परम पिता या परम माता की आज्ञापालन में ही उसको आनन्द और लाभ प्रतीत होता है। एक उदाहरण द्वारा यह बात कुछ अच्छी तरह प्रगट हो सकेगी। मान लीजियें कि एक आदमी चाहता है कि मैं उसके मुक़दमे में गवाही में केवल इतनी बात झूठ कह दूँ कि अमुक पुरुष ने एक दसतावेज़ पर मेरे सामने हस्ताक्षर किये और इस झूठ के बदले वह मुझको पाँच हज़ार रुपये देने पर राज़ी है। यदि मैं झूठ बोल देता हूं तो मुझको पाँच हज़ार रुपये मिल जाते हैं और झूठ न बोलूँ तो इस रुपये के लाभ से मैं वञ्चित रहता हूँ। अब जिस बेचारे के अन्दर छोटी संध्या आदि के ~~स्व~~ और आगामी दोनों महान् आनन्द और उस आनन्द के परम लाभ का विश्वास न हो और इतनी बड़ी रकम ऐसी सुगमता से हाथ आती दीख पड़े उसके लिए ऐसे समय में केवल यह समझ कर झूठ न बोलना बहुत कठिन है कि झूठ से आगे को किसी समय दुःख और सत्य से आगे किसी समय कुछ छोटा-मोटा सा सुख प्राप्त होना संभव है। किन्तु विश्वासी के लिए पाँच हज़ार बल्कि पाँच करोड़ रुपये के बदले में भी झूठ बोलना कठिन ही नहीं किन्तु ऐसा ही असंभव है जैसा कि आप के लिए एक दस हज़ार

रुपये के नोट के बदले में बीस रुपये के पैसे लेना । कोई अज्ञानी बच्चा तो यह समझेगा कि इतने पैसों के ढेर की अपेक्षा नोट बहुत तुच्छ पदार्थ है परन्तु आप अपनी ही कहेंगे । विश्वासी या ईमान्दार प्रथम तो यह समझता है कि हानि या लाभ जो होता है वह पिछले कर्म्मों का फल है, जिसको रोकने वाली कोई शक्तिही संसार भर में नहीं है। ऐसी दशा में किसी अनुचित काम का करना और उचित का न करना मुफ्त की और रास्ते पड़ी बुराई और पाप सिर पर रखना है और ऐसे ही अनुचित काम का त्याग और उचित काम का करना मुफ्त की और रास्ते पड़ी भलाई और पुण्य का ले लेना है । दूसरे विश्वासी या ईमानदार सोचता है कि यदि वह सत्य बोले तो रुपया चाहे न भी मिले परन्तु ईश्वर अपने प्यारे पिता की परम प्रसन्नता के विश्वास और उसकी "शाबाश २" और "ओं भूः" आदि की आकाश-वाणी हृदयाकाश में से आने का पूर्वोक्त प्रकार वह महान् आनन्द और उस आनन्द का वह महान् लाभ प्राप्त होता हुआ उसको प्रतीत होता है कि तीन लोक का राज्य उस के आगे तुच्छ है । यदि वह झूठ बोल दे या कोई और अनुचित काम कर बैठे । और उसके बदले में पांच हज़ार रुपया या और कुछ भी लेलेवे तो उस आनन्द से और उसके लाभ से कि जो उसकी अपेक्षा बहुत अधिक है वह अपने को वंचित रखता है और उस रुपये को बहुत मँहगा ख़रीदा हुआ समझता है। विश्वासी की दृष्टि में तीन लोक के राज्य को एक आने में दे देना इतना मँहगा सौदा नहीं है जितना महँगा यह सौदा है। राज्य के छिन जाने से भी अधिक दुःख विश्वासी को उससे प्रतीत होता है। भला कहां तो सारे संसार को, अपने, पराये, राजा, प्रजा, भले बुरे आदि सब को पल पल में अपने एक एक रोम द्वारा निहाल करते हुए और ईश्वर को अपने ऊपर मोहित होते हुए और अपना ऋणी अनुभव करते

हुए, और कहाँ यह महातुच्छ दशा । विश्वासी उस आनन्द और लाभ के बदले में पाँच हज़ार रुपया क्या पाँच करोड़ पृथ्वियों के लम्भ को बड़ी .खुशी से त्याग करने को भी कोई त्याग नहीं बल्कि एक बहुत बड़ा नफ़ा समझता है । उस आनन्द और लाभ के बदले में विश्वासी दुःख, टोटे और रंकपने को और प्रत्येक प्रकार के कष्ट को बड़े आनन्दपूर्वक उठाने को तैयार होता है, जेलख़ाने और मौत और सारे संसार की बदनामी तक भी उसको कोई दुख नहीं पहुँचा सकती है । विश्वासी समझता है कि जेलख़ाना उस के वहाँ होने के कारण पवित्र और उत्तम से उत्तम स्थानों के समान बन गया है। फाँसी की रस्सी उसके गले में पड़ने के कारण एक बड़ी अनमोल वस्तु बन गई है । जेलख़ाने में और फाँसी पर और हर प्रकार के कष्ट की दशा में विश्वासी अपने आप को बादशाहों से ऊँची दशा में पाता है । उस समय भी उसकी दशा ऐसी होती है कि बड़े से बड़े दुनियापरस्त बादशाह भी उससे ईर्ष्या करें ।

"भीखा भूखा कोई नहीं सबकी गठड़ी लाल ।
गाँठ खोल नहीं देखते इसबिध भए कँगाल ॥"

इस दोहे के अनुसार वह अपने आप को रत्नों और लालों से परिपूर्ण और भरपूर समझता है और इस दोहे के अभिप्राय का विश्वास उस को रहता है कि :—

"सात गांठ कोपीन की साधन मम्ये ग्रौंक ।
राम अमल माता फिरे गिने इन्द्र को रंक—"

प्रत्येक दशा में अपनी प्रत्येक लीला पर विश्वासी को मानो स्वर्ग से फूलों की वर्षा होती हुई और स्वर्ग में आनन्द के बाजे बजते हुए प्रतीत होते हैं और "तुम्हारा राज्य गया और उसका ईमान गया" वाली कहावत की जो लोग हँसी उड़ाया करते हैं, जिससे उनका मतलब

यह हुआ करता है कि ईमान या विश्वास की अपेक्षा राज्य अधिक आदर के योग्य है। यह स्पष्ट है कि वे लोग सर्वथा भूल में हैं और जब कि राज्य आदि को पूर्व कर्मों का फल माना जाता है या बुद्धि, बल, तेज आदि को उन की प्राप्ति का कारण माना जाता है, तो अच्छे या निष्काम कर्मों का होना और बुद्धि आदि का प्राप्त होना भी तो विश्वास से या ईमान से ही तो संभव है। किसी ने बहुतही ठीक कहा है कि सांसारिक पदार्थों को यदि मनुष्य लेना या पकड़ना चाहता है तो यह छाया की तरह आगे आगे भागते हैं और यदि इनसे मुँह फेर कर ईश्वर की ओर जावे तो उनसे भी अधिक लाभ की प्राप्ति तो हो ही जाती है। परन्तु यह पदार्थ भी छाया की तरह प्रायः पीछे पीछे या साथ साथ रहते हैं। तो फिर क्यों न ऐसे सुगम लाभ को प्राप्त किया जाय ?

इस प्रकार के विचार से यह भी सुगमता से समझ में आ जाता है कि धर्म पर चलने में चाहे उन्हें त्याग करना पड़े या दुःख आदि किसीकिसी समय दीख पड़े, परन्तु वह वास्तव में त्याग या दुःख नहीं है। वह ऐसा ही है जैसा कि एक दस हज़ार रुपये के नोट के बदले में बीस रुपये के पैसों का त्याग या जैसा एक पचास हज़ार रुपये की फ़ीस के बदले में एक वकील या बैरिस्टर का किसी मुक़दमे में थोड़े से आराम का त्याग कर के चंद घंटे मेहनत करना या दुःख उठाना। इससे यह प्रयोजन नहीं है कि विश्वास की आरंभिक ही दशा में मनुष्य ऐसा बन जाता है। आरम्भ में यदि आत्मिक बल की न्यूनता के कारण यह दशा प्राप्त न हो तो भी घबराना नहीं चाहिए किन्तु इस आत्मिक निर्बलता को पिता जी के इच्छानुसार समझ कर उसमें भी प्रसन्न होने की कोशिश करना उचित है। इसी से ऊँची से ऊँची दशा की प्राप्ति

होती जायगी । मनुष्य का काम कदापि यह देखना नहीं है कि मैंने क्या किया है किन्तु यह बिचारना कि कैसा मंगल संसार में हो रहा है अर्थात् वहीं विश्वास से काम लेना इसका विचार अवश्य-मेव मन में रखना उचित है नहीं तो धर्म जो ऐसा सुगम और हर्षदायक है कठिन और दुःखदायी दीखने लगेगा (देखो कहानी सितारे और दलदल में फँसी हुई लड़की की और स्वामी रामतीर्थ का इक़रार नामा ।)

यहाँ शायद यह कहना अनुचित न होगा कि जहाँ हम इस प्रकार के वचन महापुरुषों के सुनते हैं जैसे "सत्यान्नास्ति परो धर्म्मः "या" सत्यमेव जयते नानृतम् "या" "अहिंसा परमो धर्म्मः" "वहाँ शास्त्रों आदि की पूर्वोक्त प्रकार की शिक्षा पर विचार करने पर इस प्रकार के वचन भी इन वचनों के साथ कहे जा सकते हैं अर्थात् "आनन्दान्नास्ति परो धर्म्मः" या आनन्द का साधन विश्वास को समझ कर—"विश्वासान्नास्ति परो धर्म्मः" "प्रेमएव जयते न द्वेषः" और "प्रेम एव परो धर्म्मः" आदि । यदि मेरे पूर्वोक्त निवेदन पर ध्यान दिया जाय तो सुगमता से प्रतीत हो जावेगा कि आनन्द अहिंसा, प्रेम, सत्य आदि सारे ही धर्म्मों का साधन है और विश्वास ही आनन्द का साधन है और उधर यदि सत्य की जय होती है तो प्रेम भी जय की प्राप्ति का एक बड़ा कारण है। रही अहिंसा, उसकी प्रशंसा जितनी की जाय थोड़ी है। परन्तु जहाँ अहिंसा करने वाला पापी समझा जाता है और हिंसा न करने वाला पापी नहीं तो धर्म्मात्मा भी नहीं समझा जाता, वहाँ प्रेमी हिंसक या पापी न होने के साथ धर्म्मात्मा समझा जाने योग्य है। इस सम्बन्ध में एक बात और है जिसकी ओर आपका ध्यान दिलाया जाना उचित प्रतीत होता है । वह है पारिवारिक, सामा-

जिक और जातीय उपासना। एक मसजिद में साधारणतया तो प्रति दिन और शुक्रवार को विशेष करके नमाज़ के समय और ईद के दिन ईदगाह में और हज के दिन काबे का तो कहना ही क्या है और एक गिरजा में बृहस्पति को और रविवार को क्या ही सुन्दर दृश्य देखने में आता है। मुसलमान और ईसाई लोग सामाजिक या जातीय उपासना करते हैं और उसका आनन्द और उसके फल कोई छोटे नहीं हो सकते हैं और यह भी एक कारण हो सकता है कि जिससे वे लोग उन्नति कर रहे हैं और जिससे उनकी जाति बनी है और बनती जा रही है। हिन्दुओं में आर्यसमाज में कुछ इसकी चाल है लेकिन पूरी तरह नहीं या कुछ प्रेम-सभाओं में जो अब होने लगी हैं उनमें इसका कुछ अंकुर मात्र सा दिखाई देने लगा है। बाक़ी मन्दिरों में जो आरती के समय कुछ हिन्दू दो चार दिखाई दे जाते हैं, या वहाँ जलाशय होने के कारण नहाने-धोने के लिए कोई महाशय चले जाते हैं और प्रायः बाहर से बाहर ही बिना पूजा किये या कुछ छोटी मोटी सी पूजा अन्दर जाके करके चले आते हैं। यह कोई भी शान्तिदायक बात नहीं है। बल्कि बहुत करके तो मन्दिर भंग और चरस व्यवहार करने के काम में आते हैं और धर्म्म-सभाओं में तो कुछ भी नहीं होता है कि जो किसी गिन्ती में आ सके। क्या अच्छा हो कि हिन्दुओं में भी सामाजिक, जातीय और पारिवारिक उपासना भी नित्य हुआ करे कि जब हिन्दुओं के समूह मन्दिरों आदि में एक समय इकट्ठे हो कर और एक चित्त हो कर अपनी निजी उपासना के अतिरिक्त समाजिक और जातीय उपासना भी किया करें। इसमें महान् आनन्द और लाभ है और शायद इसी के अभाव से हिन्दुओं की दशा गिरी हुई है और उनकी जाति या राष्ट्र नहीं बना है।

और मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार वही आपकी छोटी सन्ध्या या उसी प्रकार की और कोई बात इस विषय में भी हमारे मनोरथों की सिद्धि में सहायक हो सकती है।

विश्वास और ईमान के शब्दों के प्रायः ईसाई या मुसलमान होने का लाञ्छन लगाया जाता है, परन्तु हिन्दू-धर्म विश्वास का माहात्म्य जितना वर्णन करता है, उतना और किसी धर्म में हमने अब तक तो पाया नहीं। एकही श्लोक जो पहिले भी पढ़ा गया है इस विषय में इस बात को सिद्ध कर देगा । वह श्लोक यह है:—

"दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या
चिन्ता परब्रह्मविनिश्चयाय ।
परोपकाराय वचांसि यस्य
वंद्यस्त्रिलोकीतिलकः स एव" ।

जिसका अर्थ यह है "जिस पुरुष की लक्ष्मी दान के, विद्या सुकृत के, चिन्तन-शक्ति ईश्वर के समझने करने के लिए और वाणी परोपकार के काम में आती है वही (पुरुष) त्रिलोकी की वंदना या पूजा का पात्र और त्रिलोकी का तिलक है" इस श्लोक में लक्ष्मी, विद्या, चिन्तनशक्ति और वाणी, इन चार बातों का वर्णन है । परन्तु मैं कहता हूँ कि जो पुरुष जैसा कि मैंने पहले सिद्ध करने की चेष्टा की है, अपनी चिन्तन-शक्ति से विश्वास का काम लेता है अर्थात् इस वचन पर चलता है कि "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः" जिसका अर्थ है कि "मन (या चिन्तनशक्ति) ही मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष (अर्थात् दुःख और सुख या नरक और स्वर्ग) का कारण है। उसकी लक्ष्मी दान में, विद्या सुकृत में, वाणी परोपकार में अवश्य ही काम में आवेगी। और धृति, क्षमा, दम, अस्तेय आदि

अनेकानेक धर्म के लक्षण उसके अन्दर शनैः शनैः दीखने लगेंगे और विश्वासी को त्रिलोकी का पूज्य और तिलक कहना कोई अत्युक्ति नहीं है। और यह विश्वास थोड़े से नास्तिकों को छोड़ कर सब के अन्दर वर्तमान है। दो चार प्रश्न करने पर, प्रत्येक पुरुष स्वीकार कर लेता है कि यह केवल सुनी सुनाई बात नहीं किन्तु उसका हृदय साक्षी देता है कि ईश्वर है और वह सर्वव्यापक है। वह अनन्त गुणों वाला हमारा माता-पिता, है; और उस गोस्वामीजी वाली प्रश्नोत्तरी को विचार कर अर्थात् "आत्मा त्वं गिरिजामति" इस श्लोक का मन्तव्य उसको साक्षात् हो जाता है। सैकड़ों बार जब, हरिद्वार, हृषीकेश, वृन्दावन आदि में मैंने रास्ता चलते भी इस प्रकार के प्रश्न लोगों से किए हैं, तो उत्तर देते समय उनके चेहरों पर एक सच्चे और एक स्वर्गीय आनन्द का प्रकाश और होठों पर सुन्दर मुस्कराहट दीख पड़ी है और बहुत ही उत्तम उत्तम शब्द उन्होंने उच्चारण किये हैं। और फिर जब कभी मैंने उनसे तत्काल ही छोटी संध्या भी कराई तो एक स्वर्गीय समाधि वर्तमान दीख पड़ा। प्यारो! ईश्वर के नन्दनो! तुम्हारे अन्दर भी वह विश्वास निस्संदेह विराजमान है! केवल उससे काम लेने की आवश्यकता है और उसका माहात्म्य—ओह! उसका वर्णन कौन कर सकता है? हमारे मुसलमान भाई क्या यही सुन्दर शब्द कहा करते हैं कि:—

" क़ुलूबुल्मोमिनीन-अर्श अल्लाह तआला" अर्थात् "विश्वासियों के हृदय परमात्मा के निवासस्थान हैं।"

प्रार्थना के विषय में कुछ विचार।

जो कुछ अब तक कहा गया है उससे बहुत स्पष्ट प्रकार से यह

भी सिद्ध होता है कि हमको ईश्वर से प्रार्थना करने या कुछ माँगने की आवश्यकता ही नहीं।

किन्तु प्रार्थना करना उसके प्रेम, नाम-स्मरण शुभ संकल्पों, शुभ इच्छाओं पर और उसके आशीर्वाद के गुणों के माहात्म्य पर दोष लगाना है। जिसने हमको इतने अधिकार दिये हैं कि हम जब चाहें उससे बात करके उसको अति प्रसन्न कर देवें और महान् लाभ प्राप्त कर लेवें; जिसके प्रेम, पितापन और मातापन को विचार कर कहा जाना चाहिए और कहना पड़ता है कि वह आप भी और जो कुछ उसका है वह सब उसके सारे भण्डारों समेत हमारे पैदायशी हक़ के कारण और हमारे पुत्र मात्र होने के कारण और और भी अधिक हमारे उक्त प्रकार उस पर इतने अहसान रखने के कारण हमारा है; जो, जैसा कि अमृत-वर्षा नाम की पुस्तक में भाव प्रकट हुआ है, मुक्ति के भण्डारों को हमारे ऊपर न्यौछावर करता है; जो अपना सब कुछ हमारे अर्पण करने को अकुला रहा है; जिसका नाम लेने मात्र से हम उसको अपना ऋणी बना लेते हैं और मानो उसका दिवाला निकाल देते हैं; जिसकी कृपा से हम तीन लोक के पूज्य और तीन लोक के तिलक बन जाते हैं, उससे इतना कुछ पाकर भी माँगना असन्तोष और दुःख का प्रकाशक है और बड़ी कृतघ्नता है। इन बातों को सोचो तो प्रार्थना करना एक प्रकार से कम से कम विश्वास की हिंसा या बेईमानी है और कुफ़्र है, "हैमाँ का रेऊ मेहैरा पर वर दनस्त हैमाँ कारेमाँ शुक्रऊ कर दनस्त" को विचार कर मैं तो बहुत अरसे से प्रार्थना नहीं करता हूँ किन्तु स्तुति आदि करता हूँ और पिताजी के चरणों में पहुँच कर उनसे कुछ माँगने के स्थान में उनकी परम मधुर "माशुच:" और "ओंभू:" को सुनने और उससे प्रसन्न होने की चेष्टा किया करता हूँ।

नोट—इन भण्डारों में एकपदार्थ है जिसको बड़ी अनादर की दृष्टि से देखा जाता है परन्तु, जैसा कि मैंने पहिले भी कहा है, वह ! वह पदार्थ है कि जो गूढ़ दृष्टि से देखने पर ईश्वर को हमारे सबसे ज्यादा धन्यवाद और कृतज्ञता का भाजन बनाता है, क्योंकि उसके देने में ईश्वर का बड़ा प्रेम प्रकट होता है। वह पदार्थ दुःख है, उससे बचने का प्रयत्न करना तो हमारा धर्म है और न करना अधर्म है परन्तु उसकी शिकायत करना; भी अधर्म है। हमको समझना चाहिए कि जैसे एक माता या पिता अनेक बच्चों को सुन्दर पदार्थ देकर तो प्रसन्न होते ही हैं परन्तु बच्चों के मङ्गल के लिए उनको कड़वी दवाई भी देते हैं और स्कूल भेजने का कष्ट भी देते हैं। ऐसेही किसी वैर भाव आदि के साथ नहीं किन्तु पूरी सहानुभूति और दया के साथ वह परम माता-पिता परम प्रेम के वश होकर हमारे मङ्गल के लिए अति आवश्यक समझ कर हमको दुःख भी देती है (केम्बल साहब वाली कहानी)।

और हम जो ये शब्द कहा करते हैं कि "पिताजी सब आपके भक्त बन जावें" उसके सम्बन्ध में कई बातें कहने को हैं। प्रथम तो यह ईश्वर से माँगना नहीं है, किन्तु उसको मानो बहुत कुछ देना है। सब कुछ मिल जाने पर यह एक धन्यवाद और कृतज्ञता की उमङ्ग के शब्द अपने परम पिता को प्रसन्न करने के उद्देश्य से कहे हुए समझे जाने चाहिएं, जैसे कि पंडित गिरधररायजी विश्वासी के रचे हुए ये परमोत्तम शब्द हैं :—

अब प्रभु मोहि एक अभिलाषा। निशदिन रहूँ चरण के पासा ॥
हृदय आसन तोर बनाऊँ। एक पल पिता न तोहि भुलाऊँ ॥

इन शब्दों में कुछ माँगा जाना प्रतीत तो होता है परन्तु क्या यह माँगना सब कुछ पा लेने और परम सन्तोष की दशा को नहीं

बतलाता है ? और क्या बच्चे का ऐसे शब्द कहना उस परम पिता को बहुत कुछ देने से बढ़ कर नहीं है।

दूसरे हम निपट अन्धे तो हैं नहीं, हमको संसार की या अपने वसुधारूपी कुटुम्ब के अनेकानेक मेम्बरों की दशा बहुत कुछ उन्नति की पात्र दीख पड़ती है और हमको जो सन्तोष और आनन्द है वह इस विश्वास के कारण है कि यह उन्नति लगातार हो रही है और हमारी इच्छा जो उक्त शब्दों से प्रकाशित होती है (जिसको निष्काम नहीं तो निःस्वार्थ और अति उत्तम और परम सराहनीय और पिताजी को भी प्रसन्न करने वाली इच्छा तो आप अवश्य ही कहेंगे) यह है कि वह उन्नति शीघ्रता के साथ हो और सब मुझ से अधिक आनन्द के भोगने वाले शीघ्र दिखाई देने लगें और इस इच्छा का (विशेषतः उन शब्दों द्वारा) मन में लाना मात्र एक कर्म या कारण है जिसका फल या कार्य्य शनैः शनैः उस इच्छा की पूर्ति होना है। उससे परम-पिता ईश्वर के साथ बातों के लाभ और आनन्द के साथ साथ हमारे अन्दर कारण-कार्य्य के नियमानुसार एक परिवर्तन होता है कि जो उक्त इच्छा की पूर्तिरूपी वृक्ष के लिए या यों कहो कि परमात्मा की समस्त बाग़-बहारी के लिए, जैसा कि मैं वसन्त ऋतु के सम्बन्ध में सोचा करता हूँ, एक अति उत्तम खाद है कि जो इस बाग़ में मानो सदैव काल वसन्त ऋतु को उपस्थित रखती हुई नित्य नई बहार का कारण होती है। शैर :—

शाहदे दिल हवा ए मन मेंकुनद अज़बरा ए मन।
नक़्शी निगारो रंगो बूताज़ा बताज़ा नौ बनौ॥

आहा ! इससे क्या सुन्दर बात सिद्ध होती है कि शिव संकल्प और शुभ इच्छा यें स्वयं अपने पूरे होने की कारण होती हैं। प्यारे ! एक मात्र विश्वास से काम लेने की आवश्यकता है और विश्वास सबके

अन्दर है। करने कराने वाले तो वे ही पिताजी और उनकी शक्तियाँ हैं परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इस कर्म को कराकर और और छोटे छोटे कामों को कराकर वे मानो अपने बच्चों को यश देना चाहते हैं और एक प्रेमी पिता के समान अपने प्रत्येक बच्चे को इस विश्वास के आनन्द की दशा में देखने का आनन्द लेना चाहते हैं कि बच्चा ही लोक-लोकान्तरों में भक्ति फैलाने का कारण है (देखो कहानी लड़के और पाँच सौ पहलवानोंकी)। हमकुछ लिखे-पढ़े तो हैं नहीं किन्तु मूर्ख हैं परन्तु हमारा ख्याल इस विषय में कुछ है ज़रूर और वह यह है कि वेदों और अन्य धर्म्म-पुस्तकों में जो प्रार्थना की आज्ञा है उसका भी मतलब शायद यही है कि हम शुभ इच्छाओं के मनमें लाने और विचार और विश्वास के नेत्रों से उनकी तुरन्त ही पूर्ति होते देखने के आनन्द और लाभ को उठावें। सन्ध्या आदि के मंत्रों के विषय में ऐसे ही विचार मन में लाकर मैं महान् आनन्द लिया करता हूँ (देखो कहानी स्वामीरामतीर्थजी का इक़रारनामा, बेग़म साहबा का फकीर से दुआ की दरख़्वास्त करना—Forget-me-not नामी फूल की कहानी)। कि सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति और दुःखों आदि की निवृत्ति के लिए प्रार्थना करना तो व्यर्थ भी है। ये बातें कर्मों के फल से होती हैं और फल टल नहीं सकते हैं और उनका टलना अच्छा भी नहीं है और सांसारिक पदार्थ माँगने से मिलते भी नहीं हैं। अगर मिलते तो ईश्वर बेचारे को बड़ी कठिनता पड़ जाती। कोई अपने शत्रुओं की मौत माँगता, सब अपने आपको सदा के लिए जीता रखना चाहते, मुसाफिर और मकान बनाने वाले लोग इत्यादि सदाही दुनियाँ में होते हैं और वे एक बूँद वर्षा की न पड़ने देते, किसान आदि लोग वर्षा ज़रूर चाहते। इस प्रकार दुनियाँ में एक आफत मच जाती।

इसके अतिरिक्त यह बात ईश्वर जैसे पिता के बच्चों के गौरव के विरुद्ध भी है कि हम भिखारी बनें, चाहे उसी के दर के क्यों न हों। मैंने पहले कहा है कि ईश्वर का जो कुछ है हमारा है, मानो बादशाह हम हैं और वह हमारा वज़ीर है कि जो अपने बच्चों के राज्य का बड़ा सुन्दर और परम प्रेम के साथ प्रबन्ध करता है (देखो कहानी राजा के पुत्र मोहन भानुप्रताप या कहानी लड़के की जो महल में बादशाह था—लार्ड कर्ज़न और देहली दरबार) परन्तु जैसे एक कम उमर बादशाह को वजीर वग़ैरः बाज़ चीज़ें जो वह माँगता है, नहीं देते हैं चाहे वह उनका मालिक ही क्यों न हो क्योंकि वे उसके लिए हानिकारक होती हैं और इसी प्रकार उसकी बाजी इच्छा को पूरी नहीं करते हैं बल्कि उसको कभी कभी शायद मार भी पड़ती है ; इसी प्रकार हमारे खजाने में से हमारा प्यारा वज़ीर, हमारा परम पिता परमात्मा हमको उचित ही पदार्थ देता है। हमको उसकी बुद्धि पर विश्वास रखना चाहिए। मैं अपने पुत्र से कहा करता था कि वह मुझसे कोई चीज़ खुशामद के साथ न माँगे, पुत्रों के समान बेधड़क अपनी इच्छा को प्रकट कर दे और मैं यथोचित उसको पूरी करने की चेष्टा करूँगा और मैं ईश्वर के विषय में भी ऐसाही समझता हूँ और इस दोहे के अनुसार कि:—

> "चार पदारथ पुत्र हित लिए खड़े अकुलात।
> ज्यों सुत को भोजन लिये करत चिरौरी मात॥"

और इस प्रकार के और कई वचनों के अनुसार जिनमें से कुछ इस एड्रेस में भी पढ़े गये हैं, मैं तो यह समझा करता हूँ कि माँगना तो एक ओर रहा जब कभी मौक़ा होता है तो ईश्वर और सारी सृष्टि (देखो कहानी जहाज़ पर प्लेग की) मानो मेरी खुशामद और चिरौरी कर रही है कि हम खावें, पीवें, सोवें और जो पदार्थ

हमको वे पिताजी देना उचित समझते हैं उनका यथोचित उपभोग करें कि जिससे हमारा स्वास्थ्य और बल-बुद्धि और दुःख और हानि आदि की दशाओं में सहन-शीलता और सब प्रकार के गुण बढ़ते जांय और संसार में उनके प्रभाव फैलें। हम ऐसा न करें तो आप निर्बल और बीमार हो कर कम से कम कुछ दूर तक एक प्लेग वाले के समान ज़हरीलापन फैलाने के कारण और इसलिए पापी बन जायँ।

मैं कभी कभी बतलाया करता हूँ कि मेरा इकलौता बेटा मोहन जिसको बीस वर्ष की उमर में पिताजी ने अपने चरणों में बुला लिया था और जिसके साथ अन्तिम समय में मैंने ईश्वर के विश्वास पर और उस परम पिता की प्रेरणा के अनुसार पूरे भरोसे के साथ प्रतिज्ञा की थी और कुछ और बातों के साथ कहा था कि "बेटा तू इस विश्वास के साथ पिताजी के चरणों में जा कि तेरी मृत्यु संसार में महान् आनन्द और सच्चे सुख के लाने का कारण बनाई जावेगी और बेटाजान ! मैं खाऊँगा, पीऊँगा और जीऊँगा तो इसी काम के लिए और मरूँगा तो इसी काम के लिए। और मेरा तन मन और धन कि जिसके वारिस तुमही हो, इसी काम के लिए अर्पण हो चुका और बेटाजान ! जिस मौत से ऐसे फल पैदा हो सकें तो चाहे वह एक तुझ जैसे बेटे की और कैसी कहर की और जवानी की मौत क्यों न हो, परन्तु वह इस योग्य है कि उस पर हज़ार जानों को कुरबान कर दिया जावे।" मैं कहा करता हूँ कि वह मेरा प्यारा बेटा मेरा मोहन ज़ुबान हाल से मुझसे अपील कर रहा है और कह रहा है कि "प्यारे पिता, आप मुझको प्यार करते हैं तो वह काम कीजिये कि जिससे मुझको सुख हो। आपके शोक करने और दुःख मानने से तो मुझको दुःख और हानि ही पहुँच सकती है। प्रथम तो आपका दुःख मेरा दुःख है, दूसरे दुःख और शोक से आप निर्बल और बीमार

होकर निर्बलता आदि का ज़हर फैलावेंगे। आप मुझको सुख पहुँचा सकते हैं अपने स्वास्थ्य को उन्नत करके और अपने अन्दर बल, बुद्धि, तेज, प्रेम, हानि और दुःख आदि की दशा में सहन-शीलता धृति, क्षमा, दम, दिलेरी, बहादुरी, आदि २ को लाकर उनके प्रभावों को संसार में फैलाने से कि जिससे संसार भर में से सुन्दर ही प्रभाव निकलें और वे प्रभाव मेरे अन्दर आकर मुझको परम पिताजी की और आपकी और माताजी और ताऊ जी और बाबाजी और नानाजी आदि की और सारे संसार की दृष्टि में अधिक से अधिक सुन्दर और मोहन बनावें और बनाते रहें। और सबकी सेवा करने की योग्यता और उस सेवा के लिए कठिनाइयाँ सहन करने की शक्ति मेरे अन्दर पैदा होवे। आप अवसर मिलने पर अवश्यमेव अपनी भोजन-लीला, पान-लीला, शयन-लीला, सुन्दर-वायुसेवन-लीला, शौच-लीला, दाँतन-लीला व्यायाम, तेल-मर्दन, स्नान, ध्यान, भजन, उपासना-प्रचार आदि लीलाएँ, और संसार के लिखने पढ़ने और व्यवहार आदि के काम की लीलाएँ आदि अवश्य किया करें और आनन्दित रहने की कोशिश अवश्य किया करें क्योंकि मेरे मंगल का सब से बड़ा कारण आपका आनन्द रहना ही है और परमात्मा की कृपा से और अनेक धर्माचार्य्य गुरुओं की कृपा से जो नुसख़े आनन्द के आप पर प्रकाशित हुए हैं, उनसे काम लीजिये। यह नुसख़े और परमात्मा के प्रेम आदि के विषय में जो आपके विचार हैं उनसे काम लीजिये। चाहे कोई कोई लोग आपको मूर्ख कहें वे नुसख़े और विचार अति उत्तम और परम आनन्ददायक हैं और मैं उनके लिए अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। इत्यादि"

और सारा खुलासा इस अपील का इन दो शब्दों में आ जाता है कि "माशुचः" और इसी प्रकार मेरी प्यारी माताजी, मेरे प्यारे पिताजी, मेरे प्यारे भाई-बहिन-बेटे-बेटियाँ, मेरे प्यारे दादा-दादी, नाना-

नानी, समस्त पुत्र गण, समस्त अपने पराये, राजा-प्रजा, इस लोक के निवासी और परलोक-निवासी और समस्त लोक लोकान्तरों के निवासी समस्त मनुष्य-जाति कि जिसमें हमारे तत्वज्ञ विद्वान् भी सम्मिलित हैं कि जो मेरे जैसे विचार रखने वालों को मूर्ख बतलाया करते हैं। और सब पशु पक्षी आदि प्राणीमात्र बल्कि जड़ पदार्थ भी अर्थात् मेरा वसुधारूपी कुटुम्ब बल्कि इस बात में अपने प्यारे बच्चों का परम लाभ समझ कर जगत्पिता ईश्वर भी हमारे मोहन जी के समान .ज़ुबान हाल से अपील करते हैं और कहते हैं कि "माशुचः" और बधाइयाँ प्यारो तुमको और बधाइयाँ मुझको कि हम उक्त प्रकार काम करने से सबकी तृप्ति के कारण बन जाते हैं और मानो ईश्वर पर और उसकी समस्त सन्तान पर भारी अहसान करते हैं और उनको अपना कृतज्ञ बनाते हैं और उनकी कृतज्ञता का भाव साधारण सा Thank you कह कर तृप्त नहीं हो जाता है। किन्तु उनमें से प्रत्येक अपना सर्वस्व और अपने अनन्त गुणों के अनन्त भण्डारों को हमारे रोम रोम को अर्पण करके यही कहता हुआ प्रतीत होता है कि "I wish I had more to offer" अर्थात् "मेरी अभिलाषा यह है कि मेरे पास देने के लिए कुछ और होता" प्यारो इस श्लोक का अभिप्राय साक्षात् अनुभव होने लगता है कि:—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं,
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
संचाराः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वागिरो,
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥

हमको चाहिए कि योग्यता की प्राप्ति और इच्छा न करने की महान् उच्च दशा को लाभ करें और इसका साधन और हानि दुःख

आदि की दशाओं में धैर्य्य और दृढ़ता का साधन भी वही छोटी संख्या है।

समुद्र-यात्रा।

यहाँ पर वैश्य जाति के धर्मों के सम्बन्ध में मुझको, एक बात के विषय में, कुछ निवेदन करने की आवश्यकता प्रतीत होती है कि जिस पर यहाँ कलकत्ते में भी एक बड़ा आन्दोलन हो रहा है। वह विषय है समुद्र-यात्रा। अब कुछ दिनों से हमारे देश में इसका हिन्दू-जाति में प्रचार बढ़ने लगा है। व्यापार या तिजारत के लिए तो कम, परन्तु विद्या पढ़ने आदि के लिए हमारे अधिक भाई इंगलैण्ड, अमेरिका, जापान आदि को जाने लगे हैं, कि जहाँ से वे बैरिस्टर, इञ्जीनियर, डाक्टर, सिविल सरविस के मेम्बर आदि होकर आते हैं और प्राय: बड़ी बड़ी आमदनी पैदा करने के योग्य बन जाते हैं। और इससे और लोगों को भी इंगलैण्ड आदि जाने की उत्तेजना होती है। इधर देश और जाति के जो लीडर गिने जाते हैं, उनका मत यह है कि जिस चाल पर दुनिया चल रही है, जिस प्रकार और और देश शिल्प-विद्या, तिजारत इत्यादि में उन्नति कर रहे हैं, उसको विचार कर और हमारे मुसलमान भाइयों आदि को भी इस सम्बन्ध में उन्नति करते देख कर हमारे देश और जाति को जीवित रहना भी असंभव हो जायगा, यदि हम भी अपने देश की विद्याओं के साथ साथ आवश्यक पश्चिमी विद्याओं को लाभ करके उसी प्रकार उन्नति न करें। और हमारे देश के लीडर बहुत प्रयत्न इस बात का कर रहे हैं कि हमारे नौ जवानों की अधिक अधिक संख्या पश्चिमीय देशों में जाकर इन विद्याओं को सीख कर आवे और अपने देश को लाभ पहुँचावें। यदि विचार किया

जाय कि कपड़ा, काँच का सामान, मशीनरी आदि कितने करोड़ रुपये का सामान हमारे देश में उन देशों से प्रति वर्ष आकर कितना रुपया हमारा उन देशों में खिँचा चला जाता है, और उन देशों के लोग हमारे देश में आकर जो रहते हैं वे कितना रुपया प्रति वर्ष अपनी विद्या आदि के कारण हमारे देश में से कमा कर ले जाते हैं और इसी प्रकार की और बहुत सी बातें हैं, जिनका गिनाना इस व्याख्यान को बहुत लम्बा बना देगा, और जिनको, स्वदेशी के प्रचार के कारण बहुत लोग जान गये हैं, ~~कि जिनको~~ विचार कर देश के लीडरों की मति ठीक समझी जाने योग्य है। इन बातों का आप की वैश्य जाति से तो सबसे अधिक सम्बन्ध है, और इसी को विचार कर आप की कानफ़रेंस में कई साल से एक मन्तव्य स्वीकृत हुआ करता है। जिसमें नौजवानों को समुद्र-यात्रा करके उन देशों में विद्या पढ़ने के लिए प्रेरणा की जाती है। इसमें कुछ हमारे भाई विरोध भी करते हैं परन्तु विरोध का कारण इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है कि पश्चिमी देशों में जाकर हिन्दू-जाति के नियमों के अनुसार खान पान और आचार रहना कठिन है। जो हिन्दू लोग वहाँ गये हैं और उन्होंने खान-पान का विचार रक्खा है, उनसे हमारे भाइयों में से किसी को विरोध नहीं हुआ है। महाराजा जयपुर आदि और फ़ौजों के सरदार आदि लोग इसके उदाहरण हैं। यदि उन देशों में जाकर विद्या आदि पढ़ना आवश्यक समझा जाता ही है, और यदि वहाँ जाकर धन आदि लाभ करने का सुभीता और उपाय प्राप्त होताहै तो उचित प्रतीत होता है कि वहाँ जाने में विरोध न किया जाय, किन्तु ऐसा सुभीता कर दिया जाय कि खान-पान आदि न बिगड़े। ऐसे होटल तो वहाँ बहुत हैं कि जिनमें मांसादि नाम को नहीं आने पाता क्योंकि वहाँ हज़ारों आदमी शाकाहारी (Vegetarian) हैं जो मांसादि नहीं

खाते हैं। और सारे ही होटलों में पहिले सूचना देने पर वैष्णव भोजन का प्रबन्ध हो सकता है। परन्तु खाना बनाने वाले हिन्दू नहीं हैं। मैं यह भी बतला देना चाहता हूँ कि उन देशों में मांस-मद्यादि से बच कर रहने से भारतवासियों के स्वास्थ्य को हानि नहीं पहुँचती है। मेरी राय में चन्दा करके ख़ास ख़ास जगहों में ऐसे आश्रम बनाये जाने चाहिएँ कि जिनमें हमारे नौजवान रह कर हिन्दुओं के नियमानुसार खान-पान कर सकें। बल्कि मैं तो यह भी बहुत आवश्यक समझता हूँ, कि उन स्थानों में ऐसा भी प्रबन्ध हो कि जिससे हिन्दू-धर्म के संस्कार स्थिर रहें, और भक्तिभाव उन्नत होने का निश्चय हो सके। इसके बिना बड़ा डर है कि हमारे बच्चों के आचरण बिगड़ न जावें। परन्तु, ऐसे आश्रमों आदि का प्रबन्ध यदि होवे तो उसमें कुछ समय अवश्य लगेगा, और इस बीच में इन देशों में जाने वालों की संख्या, देश-भक्ति, लीडरों की प्रेरणा, और धन के लोभ के कारण बढ़ती जायगी। इनमें से बहुत से ऐसे होंगे कि जिनके लिए हिन्दू-जाति के, और विशेष कर वैश्य जाति, या वैष्णव-धर्म के अनुसार, अपना खान-पान रखना बहुत ही कठिन होगा। ऐसे लोग जब वापिस आवें तो उनके साथ हमारा क्या बर्ताव होना चाहिए? मित्रो! यह बात बहुत ही बड़े विचार के योग्य है। यह कोई साधारण मामला नहीं है। यदि उनको पतित कर दिया जाय, तो हिन्दू-धर्म को बहुत बड़ी और भारी हानि पहुँचने की संभावना है। प्रथम तो समय का प्रभाव कुछ ऐसा हो रहा है कि आर्य्यसमाज और ब्रह्मसमाज आदि के और उन लोगों के कारण कि जो उन समाजों से सम्बन्ध तो नहीं रखते हैं, परन्तु समुद्र-यात्रा आदि के साथ सहानुभूति रखते हैं और उन लोगों के कारण भी, कि जो यहाँ देश में रहते हुए भी आचार का विचार नहीं रखते हैं, और उनमें से बहुतसों का खान-

पान आदि उनसे भी बहुत अधिक भ्रष्ट है कि जो विलायत हो आये हैं, ऐसे समाजों और लोगों के कारण उन विलायत से लौटे हुए लोगों को पतित करना कुछ कठिन सी बात भी है। उन लोगों को छाती से लगाने को आप के बहुत भाई तैयार हैं। कलकत्ते के वैश्य भाइयों में चाहे इसकी चाल कम होने से कुछ अधिक विचार, कुछ काल के लिए हो, परन्तु और और स्थानों, में इँगलैण्ड आदि से आये हुए लोगों के साथ, बराबर खान-पान और विवाह आदि का संबन्ध, बना हुआ है। और हमारे भाई जो इसके विरोध में अपनी शक्तियाँ ख़र्च करते हैं, यह कुछ निरर्थक सा प्रतीत होता है। इन शक्तियों से कुछ और काम लिया जावे तो बहुत अच्छा हो।

दूसरे यदि उन लोगों को पतित कर दिया जावे, तो इसका परिणाम क्या होगा! ये लोग या इन में से बहुत से, दूसरे धर्म में जाकर हिन्दू-धर्म के कट्टर विरोधी बन जाँयगे और बहुत सम्भव है, कि वह नहीं तो उनकी सन्तान तो मांस को कि जिसमें हर प्रकार के मांस को समझ लो ग्रहण करने लगेंगे। मैं सविनय निवेदन करता हूं, और यह कहने के लिए मुझे क्षमा किया जाय कि इस पाप के कारण और हिन्दू-धर्म के असली शत्रु वे लोग होंगे कि जो ऐसी सख़्ती का बर्ताव, इँगलैंड आदि से लौटे हुए भाइयों के साथ करेंगे। बल्कि आर्य्य समाज आदि के लोग, जो उनको मिलावेंगे इस पाप से उनको बचाने के पुण्य के भागी और हिन्दू धर्म के असली रक्षक समझे जायँगे।

यह शायद सच होकि हिन्दू धर्म के अनुसार ये लोग पतित होने के योग्य हैं। यद्यपि हम सुनते हैं कि प्राचीन काल में भारत के वैश्य लोग, समुद्र-यात्रा किया करते थे। परन्तु ज़रा समय की

ओर भी तो देखो । इन ही बेचारों की इतनी बड़ी क्या ग़लती समझी जाती है, कि जिन में से बहुत से, इस लालच से, कि उनको लोग बिरादरी में मिला लें, कुछ ज़्यादा अनुचित व्यवहार विलायत में रह कर करने में डरते भी हैं ! यहाँ के रहने वालों को तो देखो । खुले ख़ज़ाने, सब कुछ और हर एक किसी के साथ खाने पीने में कुछ भी संकोच नहीं करते हैं । उनको पतित करने का कोई ख़्याल तक भी नहीं करता है । इसके सिवा मिश्री का व्यवहार और बर्ताव, शफ़ाख़ानों और अँगरेज़ों आदि की दुकानों की दवा, जिनमें पानी मिलाया जाता है, उससे कितने आदमी बचे हुए हैं । मेरा मतलब यह नहीं है, कि खान-पान के व्यवहार को बिलकुल तोड़ देना चाहिए । मैं इस व्यवहार को बहुत बड़े आदर की दृष्टि से देखता हूं, और यद्यपि मुझको हर प्रकार की संगति रही है परन्तु ईश्वर की कृपा से मेरा खान-पान का व्यवहार ऐसा है कि आप की कृपा से लोग प्रशंसा ही करते हैं । मेरी बड़े बल के साथ यह राय है कि भोजन सतोगुणी हो, प्याज़ लहसुन आदि जोश के बढ़ाने वाले और बुद्धि के नाश करने वाले तमोगुणी पदार्थों से परहेज़ करना चाहिए, और तमोगुणी मनुष्यों के छूने से भी भोजन में तमोगुणी प्रभाव आ जाता है । और सतोगुणी के छूने या बनाने से भोजन सतोगुणी और अमृत बन जाता है । इसीलिए शायद हिन्दुओं में ब्राह्मणों या सतोगुणी लोगों से भोजन बनवाना उचित समझा जाता है । (लड़के वाली स्त्री जिसका बच्चा दूध पीकर मर गया और क्रोध चाण्डाल होता है, या काशी का साधु भंगन का पति वाली कहानियाँ देखो) परन्तु साथ ही मैं यह भी समझता हूं कि, जबकि हम उन भाइयों को पतित नहीं करते हैं, या नहीं कर सकते हैं कि जो बिना किसी विशेष कारण के यहाँ ही रह कर, बिना संकोच और बिना परदा रखने की कोशिश के, बिरादरी की कुछ भी परवाह

न करते हुए, अपना खान-पान प्रायः उससे बहुत ज्यादा बिगाड़ लेते हैं कि जितना उन बेचारे समुद्र-यात्रा वालों का बिगड़ता है, वे लोग जो बड़े उच्च भाव को लेकर विदेश-यात्रा करके विद्या आदि पढ़ कर, देश की और हिन्दू-जाति की सेवा करने के लिए तैयार हो कर आते हैं और केवल विदेश में रहते हुए ही जिनका खान-पान बिगड़ा रहता है पर यहाँ आ कर जो शुद्ध व्यवहार करने लग जाते हैं, ऐसे देश और जाति-भक्तों को पतित करना मेरी राय में बड़ा अनर्थ है, बड़ा जुल्म है, और बड़ी ज्यादती है। और मेरे भाई मुझको यह कहने के लिए कृपा करके क्षमा करें कि इस विषय में धर्म्म की आड़ में, केवल आर्य्य-समाज आदि से विरोध के कारण काम करना, एक प्रकार की हठ-धर्मी और पाप समझे जाने की बात है। ऐसी हठ-धर्मी करने वालों को परलोक में दुःख उठाना पड़ेगा, और इस लोक में शर्म उठानी पड़ेगी, क्योंकि बहुत थोड़े लोग उनके साथी होंगे और उनको विदेश से लौटे हुए भाइयों को पतित करने में सफलता नहीं होगी। यह याद रहे, कि सनातन-धर्म्म का गौरव श्रेष्ठ बातों के करने में है। यह नहीं, जैसा कि प्रायः देखने में आता है पूजा-पाठ संध्या-वन्दन आदि तो केवल नाम मात्र को या बिलकुल भी नहीं; मंदिर में तो शायद ही जन्माष्टमी या शिवरात्रि आदि को भूल कर चले जाते हों; झूठ चाहे जितना बोल लें; कम तोलने आदि द्वारा चाहे जितने गले काट लें, रिशवत या घूंस चाहे जितनी ले लेवें, और और कुकर्म चाहे जितने करलें; परन्तु आर्य्यसमाज का उचित या अनुचित विरोध कर लेना अपना धर्म्म समझ लिया और सनातन-धर्म्मी बन गये। यहाँ तक कि कोई मनुष्य यदि विद्या, सत्य-भाषण, अग्निहोत्र, ब्रह्मचर्य्य, आदि का जिक्र करें, तो हमारे कोई कोई भाई उसको आर्य्यसमाजी समझ कर, कुछ दूसरी ही दृष्टि से देखने लगते हैं मानो उनकी राय

में, सनातन-धर्म्म को विद्या, ब्रह्मचर्य्य, अग्निहोत्र, और सत्य-भाषण आदि श्रेष्ठ कामों से भी विरोध है !

और यदि इन विदेश से लौटे हुए भाइयों के साथ, इतनी सख्ती के बदले, कुछ प्रेम का बरताव हो, यदि इन लोगों को लौट कर आने पर, साधारण चान्द्रायण व्रत, गंगा–स्नान, गायत्री-जाप, हवन, और ब्रह्म-भोज कराकर बिरादरी में मिला लिया जाय जब कि यहां रहने-वाले बड़े बड़े भ्रष्टाचारियों को सम्मिलित रक्खा जाता ही है, तो इसका परिणाम यह होगा, कि ये लोग, अन्य देशों मे जाकर भी, हिन्दू-मत के अनुयायी, प्रेमी, और पूरे पक्षपाती बने रहेंगे, और हिन्दू-मत से प्रेम रखने के कारण अपने आचार को उससे ज्यादा नहीं बिगड़ने देंगे, कि जितना उनकी शक्ति के भीतर है; और विदेश में हिन्दू-धर्म के महत्त्व का प्रचार करेंगे। ये विदेशियों और अन्य मत वालों को गोहिंसा आदि से बचावेंगे और यहां आकर, पूर्ण प्रकार से हिन्दू-नियमों के साथ रहेंगे जैसा कि बहुत लोग अब भी करते हैं और वे साधारण हिन्दुओं की अपेक्षा, हिन्दू-धर्म के बहुत ज्यादा तरफ़दार होंगे और उधर, इँगलैंड आदि देशों से, विद्या सीख कर आके, अपने देश की उन्नति करेंगे। इसलिए इन लोगों की सहायता करना बड़ा धर्म का काम है और उनकी सहायता करनेवाले दोनों लोकों में यश के भागी होंगे।

हिन्दू-धर्म की जो इस विषय में शिक्षा है, यहां पर मैं उसकी ओर आप का ध्यान दिलाना चाहता हूँ। एक श्लोक जिसको हिन्दू लोग सब शुभ कार्य्यों के आरम्भ में पढ़ा करते हैं और जो मैं पहले पढ़ चुका हूँ उसको मैं इस अवसर पर फिर पढ़ना उचित समझता हूँ। वह यह है:–

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुंडरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

अर्थात् "कोई मनुष्य चाहे अपवित्र हो या पवित्र और चाहे कैसी भी बुरी भली दशा में क्यो न हो, परमात्मा का स्मरण करते ही वह भीतर बाहर से शुद्ध हो जाता है" और जैसा कि मैंने पहले भी निवेदन किया है, यदि किसी अपवित्र स्त्री या पुरुष के स्मरण से, या किसी बुरी इच्छा के मन में आने से मनुष्य तत्काल अपवित्र हो जाता है, तो यह भी निश्चय ही है कि ईश्वर के स्मरण करने और शुभ इच्छा के मन में आने से मनुष्य तत्काल पवित्र हो जाता है; और इस श्लोक का मंतव्य ठीक ही प्रतीत होता है। गुसाईं तुलसीदास जी की ये दो चौपाइयाँ भी, इस जगह फिर दोहराने के योग्य हैं:—

कहाँ लों करूं मैं नाम बड़ाई। राम न सकैं नाम गुण गाई॥१॥
बार एक राम कहे जो कोई। होय तरण-तारण नर सोई॥ २॥

और पूर्वोक्त विचारानुसार यह वचन अत्युक्ति कदापि नहीं कहे जा सकते हैं। ऐसे विचारों को मन में लाकर हम को उस ऋषि-पत्नी का भंगी से "राम" शब्द उच्चारण करा कर अपना घड़ा उठवा लेना अनुचित या आश्चर्य्य-जनक नहीं प्रतीत होता है कि जिस की कथा पुराणों में इस प्रकार वर्णन की हुई सुनने में आई है। एक ऋषि बस्ती से थोड़ी दूर, अपनी पत्नी के साथ, रहा करते थे। बस्ती के किनारे पर एक कुँवा था; उस में से उन की पत्नी घर के काम के लिए पानी लाया करती थी। एक दिन ऋषि जी के स्नान के लिए उन की पत्नी पानी लाने को गई। उस दिन दैवयोग से वहाँ घड़ा उठाने में सहायता

करने वाला कोई आदमी बहुत देर तक नहीं मिला। बहुत देर के पश्चात् एक भंगी उस तरफ को आया तो ऋषि-पत्नी ने अपने स्वामी के स्नान में विलम्ब होता देख कर भंगी से घड़ा उठवा लिया। परन्तु उसने पहले भंगी से तीन बार "राम" का शब्द कहलवा लिया। जब घर आने पर, ऋषि ने देर का कारण पूछा तो ऋषि-पत्नी ने उत्तर देते हुए कहा कि "महाराज! मुझ को तो और भी अधिक देर हो जाती, यदि मैं भंगी से घड़ा न उठवाती।" इस पर ऋषि बहुत घबराये और कहा कि "भंगी के घड़ा छूजाने से तो घड़ा और ऋषि-पत्नी और सारा घर तक भी भ्रष्ट होगया।" ऋषि-पत्नी ने कहा, "महाराज! आप घबरावें नहीं मैंने भंगी से तीन बार "राम राम" कहलवा लिया था।" इस को सुन कर फिर ऋषि ने अपनी पत्नी को डांटा और कहा कि राम-नाम में तेरा विश्वास कम हो गया प्रतीत होता है। क्या एक ही बार राम कहलवा लेना उस भंगी को पवित्र कर देने के लिये पर्य्याप्त नहीं था?

प्यारे मित्रो! जब कि हमारे धर्म में एक बार राम का शब्द उच्चारण कर लेने का इतना माहात्म्य माना गया है तो उन विदेश से आये हुए भाइयों को विशेष कर इस समय की दशा देख कर उक्त प्रकार चान्द्रायण करा कर मिला लेना पूर्णतया उचित ही है और इस के विपरीत करना हिन्दू-धर्म के मन्तव्यों के विरुद्ध प्रतीत होता है। यदि कोई कहे कि उक्त प्रकार की बातें आपद्धर्म संबन्धी हैं, तो ऋषि के स्नान में देर होने की अपेक्षा हमारी आपत्ति हज़ारों दर्जे बड़ी है और परदेशों में उक्त प्रकार आश्रम बनने तक इस को आप अवश्य ऐसा ही समझें।

परन्तु मुझ को ज्यादा कहने-सुनने की इस विषय में भी आवश्यकता नहीं है मेरा विश्वास ईश्वर पर है। यदि उस की

कृपा अर्थात् छोटी सन्ध्या से काम लिया जाय तो बस सब प्रकार मंगल ही होगा।

बाल-शिक्षा ।

मित्र गण ! अब जो मुझको आपकी सेवा में निवेदन करना है वह भी एक बहुत ध्यान देने के योग्य बात है । जो जो बातें आपकी कानफ़रेंस में विचारणीय हैं, वे सभी बड़ी आवश्यक हैं । परन्तु यह अन्तिम बात भी किसी से कम महत्त्व-पूर्ण नहीं है । यह है अगली पौद को ठीक तरीके पर तैयार करना । हमारा प्रेम और हमारी आवश्यकताएँ यह चाहती हैं कि हमारी सन्तान स्वस्थ, बलवान्, विद्वान् और धर्मात्मा बनें और वैश्य-धर्म में तत्पर हो । वह अपनी जाति की नहीं,अपने देश के नहीं किन्तु जैसा कि हर एक हिन्दू का हक़ है सारे संसार की सेवक हों।

इस विषय पर पूर्ण रूप से विचार करने की चाल न होने के कारण चाहे हम लोग कुछ क्षमा के योग्य समझे जावें, नहीं तो यह हमारे विचारने की बात है कि संसार मेंअपनी संतान से अधिक और कोई वस्तु प्रेम की पात्र नहीं होती है और ये बेचारे बिलकुल अशक्त और माता-पिता के ही अधीन होते हैं और मानो अपने इन बच्चों को परमात्मा माता-पिता को उचित रूप से पालन-पोषण करने के लिए अप्पील करता है । बालकों के लिये माता-पिता की बहुत भारी जिम्मेदारी है और यदि कोई इन अपने और ईश्वर के बच्चों के स्वास्थ्य, बल, विद्या और धर्म जैसी आवश्यकीय बातों की ओर से बे परवाही करें या बिरादरी की चाल या स्त्रियों की बातों को अनुचित रूप से मानने आदि जैसे कारणों से बच्चों को इन बातों की प्राप्ति कराने के लिए अपनी शक्ति के अनुसार प्रबन्ध न करे तो क्या ऐसे

पुरुष को आप बड़ा भारी जिम्मेदार ही नहीं किन्तु पुत्र-हिंसक और पुत्री-हिंसक नहीं कहेंगे ? और क्या इस हिंसा से बड़ी और कोई हिंसा और इस पाप से बड़ा और कोई पाप आपकी समझ में हो सकता है ? ओह ! विचार करने पर रोंगटे खड़े होते हैं ! त्राहि मां, त्राहि मां, परमात्मन् ! बचाना हम सबको इस महा-पाप से और इन बे-बस और पराधीन दीन बच्चों की हत्या से। अरे क्या हुआ जो तुमने अपने बच्चों के लिए लाखों-करोड़ों रुपये छोड़ दिये और स्वास्थ्य आदि का उचित प्रबन्ध न किया ? बिरादरी आदि की बिलकुल **कमजोर और अपाहज** रिवाज़ों के बहाने या पक्ष-पात के वशीभूत होकर छोटी उमर में शादी करके उनका मानो **गला काट डाला** । उनके जीवन को **मृत्यु से अधिक दुःख-दायी** बना दिया, और आगे को उन बेचारों को अपनी सन्तानों की बीमार और कीड़े-पतंगों के समान निर्बल देखने का महा-कष्ट उठाना पड़ा ।

जो लोग लाखों करोड़ों रुपये अपने बच्चों को दे जावें परन्तु उनके स्वास्थ्य, विद्या और धर्म की प्राप्ति का प्रबन्ध करने में बड़े तुच्छ कारणों से गाफिल और बे-परवाह रह कर उनके जीवन को मृत्यु से भी अधिक दुःख-दायी बना देवें, उनकी अपेक्षा वे माई के लाल अधिक प्रशंसा के पात्र समझे जायेंगे जो रुपया तो चाहे अपने बच्चों के लिए न छोड़ें परन्तु उनको बलवान्, तेजस्वी, विद्वान्, बुद्धि-मान् और धर्मात्मा बना जावें। ऐसे बच्चों को धन कमाना भी कुछ कठिन नहीं हो सकता और इन बच्चों की अपेक्षा वे बच्चे जो अमीर तो हैं परन्तु निर्बल, मूर्ख और धर्महीन हैं वे सब प्रकार से दया के पात्र हैं ।

मित्रगण ! यह कोई साधारण बात नहीं है । इस पर पक्षपात-रहित होकर पूर्ण विचार करना उचित है । शास्त्रानुसार और विचार और बुद्धि से पूरी सहायता लेकर काम करना चाहिए । इसमें सन्देह नहीं है कि यह एक अत्यन्त शोचनीय बात है कि उच्च जातियों में बिरादरी का दबाव यदि कहीं है तो वह बहुत ही थोड़ा है और वह भी कम होता जाता है । परन्तु बच्चों का पालन-पोषण आदि ऐसी बातें हैं कि उन में प्रायः बिरादरी कोई दबाव डालने का हक़ नहीं रखती । और यदि प्रेम पूर्वक शान्ति के साथ बिरादरी की पंचायत में यह बात पेश की जावे तो सम्भव है कि बिरादरी अपने रिवाज़ों को ही बदल लेवे । और यदि न बदले और बिरादरी में अधर्म की बातें बच्चों के इस लोक और परलोक का सत्यानाश करने वाली बातें बनी रहें, तो जो निर्बल बिरादरी दुराचारी और धर्म-भ्रष्ट लोगों का कुछ नहीं कर सकती है, वह तुम्हारा भी कुछ नहीं कर सकेगी । तुम कम से कम इस एक मामले में, कदापि उसकी परवाह न करो और अगर कुछ बिरादरी के पक्षपाती लोग तुमको कष्ट पहुँचावें भी तो प्यारो, अपनी सन्तान के इस लोक और परलोक के परम सुख के लिए, उस सन्तान की सन्तान के भले के लिए, देश-और जाति के भले के लिए, सारे संसार के भले के लिए कि जिसमें वह तुम्हारे कष्टदाता भी सम्मिलित हैं, इस कष्ट को प्रसन्नता के साथ सर पर लो । लोग तो धर्म्म के लिए बड़े२ कष्ट उठाते हैं । क्या आप इतना भी नहीं कर सकते ? घबराओ मत । धर्म और ईश्वर आपके साथी होंगे और आपकी निश्चयही जय होगी ।

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥१॥

इस विषय में और कई बातों के अतिरिक्त ये बातें भी आवश्यक हैं :—

सब से पहले तो बच्चों के अन्दर वही छोटी सन्ध्या के संस्कार डालने चाहिए। बच्चों के हृदय बड़े सरल होते हैं और उनके अन्दर ये संस्कार बहुत सुगमता के साथ आकर उनके महान् आनन्द और लाभ का कारण हो सकते हैं।

दूसरे बच्चों का पालन-पोषण ऐसे प्रकार करना चाहिए कि उनके अन्दर बुरे संस्कार न उत्पन्न हों और जहाँ तक हो सके उनको शुद्ध वायु आदि प्राप्त हो सके। बच्चों के सामने कभी गाली-गलौज और अपवित्र शब्द मुँह से नहीं निकालना चाहिए और बुरी संगति से उनको बचाना चाहिए।

तीसरे व्यायाम। यह एक ऐसी चीज है कि इसके गुणों को प्रायः सब जानते हैं और उनके अधिक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है परन्तु उन गुणों को जानते हुए भी लोग व्यायाम करते नहीं हैं। आरम्भ से ही बच्चों को उनकी शक्ति के अनुसार व्यायाम कराना चाहिए। इस विषय में मुझको दो बातों के निवेदन करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। प्रथम तो यह कि जब नौ-जवानों और और मनुष्यों को भी व्यायाम यानी अपने बल बढ़ाने का चसका लग जाता है, तो वे व्यभिचार आदि बल के नाश करने वाले कामों से आप ही बचना चाहेंगे। और यह कोई छोटा लाभ नहीं है। दूसरे यह कि व्यायाम के समय हमको यह सोचते रहना चाहिए कि एक २ हरकत जो हमारे हाथ पाँव आदि की होती है उससे हमारे अन्दर बल बढ़ता जाता है। और प्लेग के रोगी में से प्लेग के परमाणु निकलने के समान हमारे अन्दर से बल-युक्त परमाणु निकल २ कर वायु और आकाश को बलवान् बना रहे हैं और इस वायु और आकाश से सारे संसार

के अन्दर, जैसा कि पहले कहा गया है, सुन्दर परिवर्तन होता जाता है कि जो हमारे परम पिता की परम प्रसन्नता का कारण होता है। मानो इस व्यायाम-लीला को देख कर स्वर्ग में "रथ में रघुनन्दन आवत हैं" वाली बात हो रही है। मानो स्वर्ग-निवासी एक दूसरे को कहते हैं—"चलो सखा दर्शन करलें—अब कसरत-लीला होती है"। मैं एक बूढ़ा आदमी हूँ, परन्तु थोड़ी कसरत अब भी करता रहता हूँ और इसी प्रकार के विचार मन में लाकर बड़ा आनंदामृत पान करता हूँ। इस प्रकार के विचार से व्यायाम से बहुत अधिक बल, बुद्धि आदि की प्राप्ति होना सम्भव है।

चौथे विद्या पढ़ाना। इसके गुणों को कौन नहीं जानता है? और उनके वर्णन करने की आवश्यकता क्या है? केवल इतना कहना उचित प्रतीत होता है कि विद्या का प्रेम बालकों के हृदयों में उत्पन्न कराना चाहिए। जैसा कि प्राय: हुआ करता है वे विद्या के पढ़ने को बेगार और दु:खदायी न समझें कि जिससे उनको दु:ख और शोच हो, और उससे बेचारे बच्चों के स्वास्थ्य, बुद्धि आदि के बढ़ने में बड़ी हानि होती है। किन्तु वे उत्साह, सच्चे प्रेम और आनन्द के साथ विद्या पढ़ें और विद्या पढ़ते हुए अपने आपको ईश्वर की प्रसन्नता के पात्र और सारे संसार के हितकारी समझने के आनन्द को और उस आनन्द के फलों को प्राप्त करते रहें। और मानो उनकी विद्याध्ययन-लीला पर भी "रथ में रघुनन्दन आवत हैं" की नाईं "चलो सखा दर्शन करलें अब पाठन-लीला होती है" जैसी आकाशवाणी आती हुई प्रतीत होती है। परन्तु अक्षरों की विद्या के साथ साथ कोई एक या अधिक दस्तकारी आदि, कृषि, बाग़वानी आदि विद्याएँ भी बच्चों को सिखलाना ज़रूरी है। और उनको नाज़ुक और ऐसा बनने से रोकना चाहिए कि उनको मेहनत करने से शर्म आवे। यदि विस्तार का भय न होता तो मैं इस

विषय में बहुत कुछ निवेदन करता। परन्तु केवल इतना ही कह देना इस समय काफी समझता हूँ कि इङ्गलैंड, ज़रमनी और रूस आदि के बादशाहों को जहाज़बनाना और जहाज़ चलाना और बहुत बड़ी बड़ो मेहनत के काम सीखने पड़ते हैं और यूरोप, अमेरिका, जापान, आदि देशों में बड़े बड़े आदमी मेहनत के काम करने में लज्जा नहीं करते। हमारे देश में दस रुपये माहवार के बाबू साहिब को अपनी दो सेर की गठड़ी रेल पर से लाने में शर्म आती है। यह प्रबन्ध होना ज़रूरी है कि बच्चे इस प्रकार की झूठी इज़्ज़त के ख़्याल से ऐसे न बन जावें कि बिना नौकर के उनका काम ही न चले और वे बेचारे आमदनी कम और ख़र्च ज़्यादा के महा-दुःख के शिकार न बन जावें। प्रतिदिन उनको कोई काम ऐसा करना चाहिए कि जिससे मेहनत का अभ्यास और इस झूठी शर्म से परहेज़ का मौक़ा मिलता रहे। बच्चों के अन्दर यह संस्कार डाले जाने चाहिएँ कि नौकर प्रायः समय आदि के बचाने के लिए होते हैं, स्वामी के स्वभाव के बिगाड़ने और उनके स्वास्थ्यादि के नाश के लिए नहीं।

पांचवें सन्ध्या आदि पञ्चमहायज्ञ कि जो कम से कम प्रत्येक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के तो नित्य के कर्म ही हैं, परन्तु इन में से छोटी सन्ध्या या ईश्वर-स्मरण का अधिकार शूद्रों को भी प्राप्त है। यह वे काम नहीं है कि जिनको लोग बेगार समझते हैं परन्तु मेरे पूर्वोक्त निवेदन से ध्यान देने से निश्चय हो जायगा कि इनसे अधिक आनन्द का देने वाला और इनसे अधिक लाभ का कारण और कोई भी काम संसार भर में हो ही नहीं सकता। और यह हमारे सारे कामों को अमृतमय बना देता है और हमारे जीवन को आनन्दमय बना देता है। किसी अंगरेजी के अनुभवी कवि ने कैसा अच्छा कहा है:—

Lord! is there any hour so sweet,
(Mother)
From blush of morn to evening star,
As that which brings me to thy feet.
The hour of '**prayer**'?

यह कविता पहले भी अर्थ-सहित आ चुकी है।

पहला यज्ञ सन्ध्या है कि जिसके विषय में कहा तो और भी बहुत कुछ जा सकता है परन्तु जो कुछ मैंने पहले निवेदन करदिया है उससे अधिक कह कर मैं आपका समय लेना नहीं चाहता हूँ।

दूसरा यज्ञ अग्निहोत्र है कि जो हमारे नित्य-कर्मों में गिना जाता है। इसका माहात्म्य तो वर्णन होना कठिन है, और इधर विस्तार का भी खयाल है। संक्षेप के साथ केवल यह निवेदन कर देना उचित समझता हूँ कि पहले का हाल तो सुना है परन्तु हमारे देखते भी यह बात थी कि दादाओं और पिताओं की स्थिति में पुत्रों और पुत्रियों की मृत्यु कभी होती थी तो वह एक बड़ा भारी अनर्थ और आश्चर्य समझा जाता था। और अब ये बातें प्रतिदिन होती रहती हैं। वर्षा की कमी से अब बहुत बार बड़े कष्ट देखने में आते हैं और अधिक वर्षा से खेती तो एक ओर रही, गाँव के गाँव बह जाते हैं; और कहीं काटी हुई फ़सल तक को वर्षा के कारण उठाने का अवसर नहीं प्राप्त होता है। पहले समय में ये बातें बहुत कम होती थीं और और अनेक प्रकार की बाधाएँ जो पहले की अपेक्षा देश को अधिक हानि पहुंचा रही हैं इन सब का एक विशेष कारण अग्निहोत्र का न होना भी है। अग्निहोत्र की आज्ञा हमारे शास्त्रकारों ने कोई बेफायदा की बेगार और वक़्त का ख़ून और कुछ धन का ख़ून ही करने के लिए नहीं दी थी। अब पश्चिमीय लोग हमारे शास्त्रों के सिद्धान्तों को मानने लगे हैं। गवर्नमेन्ट ने अनुभव करके देखा है कि धुएँ से प्लेग नहीं होती

है। पंजाब गवर्नमेंट ने इस विषय में एक प्रेस मीमो छपवाया है कि जो ता: ११-४-१९१३ के "लीडर" पत्र में छपा था। साधारण धुएँ का यदि यह फल है तो अग्निहोत्र का सुगंधित और सुन्दर पदार्थों का धुआँ और उसके साथ उन मंत्रों आदि का प्रभाव और ईश्वर के सन्तानों के हृदयों के भाव, न केवल वायु, आकाश, जल और अन्न को ही शुद्ध करने वाले होते हैं किन्तु अग्नि होत्र के समय महान् आनन्द का दृश्य उपस्थित करते हुए अग्निहोत्र करने वालों की ही नहीं, किन्तु सबकी बुद्धियों को शुद्ध करते हुए धर्म की ओर लगाने के कारण होते हैं। पूर्व समय में रोग आदि उत्पात कम होने और उचित समय पर वर्षा होने और पाप कम होने का एक कारण यह अग्निहोत्र भी था। अग्निहोत्र में समय और धन जो ख़र्च होता है उससे, और बहुत सी महान् उपकारी बातों के अतिरिक्त यह भी एक लाभ होता है, कि परिवार बहुत सी बीमारियों और कष्टों से बच जाता है और डाक्टरों को फीस अधिक नहीं देनी पड़ती और बीमारी कम होने के कारण कारबार के लिए समय अधिक मिलने से, धन कमाने का अवसर ज्यादा मिल जाता है। वेदों में अग्नि को परमात्मा का मुख कहा है और "स्वाहा" शब्द का अर्थ है परमदेव (परमपिता प्यारे परमात्मा) के निमित्त। वैसे ही "स्वधा" का अर्थ है पित्रों के निमित्त। इसलिए एक एक आहुति जो "स्वाहा" कह कह कर अग्नि में डाली जाती है वह मानो बच्चों के हाथों से परम पिता को बड़ा सुन्दर भोजन कराया जाता है कि जिससे पिता जी परम प्रसन्न होते हैं। अग्निहोत्र देवताओं की ही तृप्ति का कारण नहीं समझा जाता है किन्तु अग्नि का भाग सारे संसार को बड़े, छोटे, राजा, प्रजा, अच्छे, बुरे, मित्र, शत्रु, आदि जड़ चेतन तक सबको पहुँचता है। "अग्नि-दूतं पुरो दधे" यह वेद का वचन भी पदार्थ विद्या के मन्तव्य की पुष्टि करता

है । मानो अग्नि एक दूत के समान एक रत्ती मात्र हवि को भी सारे संसार में पहुँचा देती है । इसका माहात्म्य पूरी तरह वर्णन नहीं हो सकता । मैं अपने गाँव के लोगों से कहा करता हूँ कि ग़रीब आदमी चार आने की सामग्री एक महीने के लिए लेकर रख लेवें और उसमें कुछ यव, चावल मिला के और उसमें से, प्रतिदिन तीसवां भाग निकाल कर उसकी सात आहुति परिवार के सब लोगों को पास बिठला कर, और नहीं तो यह कह कर अग्नि में डाल दिया करें कि "पिता जी सब आप के भक्त बन जावें स्वाहा" और किसी को ज़्यादा करने की सामर्थ्य हो तो ज़्यादा हवन कर लिया करें । मल, मूत्र आदि के त्याग से, जो हम संसार में मलीनता और बीमारी फैलाते हैं, और चूल्हे चक्की झाड़ू आदि से जो हमसे प्रायः कुछ हिंसा होजाती है, उसका प्रायश्चित्त यह दैनिक अग्निहोत्र है । इससे यह स्पष्ट होता है कि अग्निहोत्र न करना बड़ा पाप है और उसका करना बड़ा पुण्य है । मैं प्रायः हँसी में कहा करता हूँ परन्तु बात वह ठीक है कि बीमारी, अकाल, सुख, दुःख और पाप भी ये सब जो दुनिया में हैं इसके ज़िम्मेदार वे लोग हैं जो अग्निहोत्र नहीं करते क्योंकि यज्ञ से बुद्धि शुद्ध और आत्मिक बल आने से काम क्रोधादि को जीतना सुगम हो जाता है और बीमारी की कमी और फसल वग़ैरः का पैदा हो जाना आदि, जो कुछ भी सुख दुनिया में दीख पड़ता है, उसके कारण हम लोग हैं जो अग्निहोत्र करते हैं । वास्तव में अग्निहोत्र करने वाले को इस प्रकार का ख़याल अपने विषय में रखने का अधिकार है कि जो उसके लिए बड़ी शान्ति का कारण होता है । मैं नहीं कह सकता हूँ कि कहाँ तक और लोग इस बात पर विश्वास करेंगे परन्तु हमारे महन्त साहिब और पंडित आनन्दनारायण आदि ने कई बार देहरादून में, हैज़ा होजाने पर कुछ चंदा इकट्ठा कराकर (जिसमें तीस रुपया म्युनिसपिल

बोर्ड गंधक के लिए देती थी और यह गंधक एक दिन पहले सायं-काल को जगह जगह जलाया जाता था) शहर में, कई जगह, एकही समय हवन कराया तो हैज़े का नाम शहर में बाक़ी न रहा। इसी प्रकार प्रयाग राज के पिछले कुंभ पर लाखों आदमियों के मेले में हम लोगों ने, अकस्मात् केवल एकही स्थान में कोई अस्सी रुपये का हवन कराया तो हैज़ा जो बड़े वेग से फैल रहा था एकदम बंद होगया।

अपने इस प्रकार के अनुभवों पर ध्यान देकर, जब कि हमारे प्यारे सम्राट् पंचम जार्ज प्रिन्स आफ़ वेल्स थे और भारतवर्ष में पधारे थे, तो उनके यहाँ विराजमान होने से पूर्व मैंने कई समाचार-पत्रों में एक लेख लिखा था कि उक्त राजकुमार के स्वागत में हमको भारतवर्ष को प्लेग से साफ़ कर देना चाहिए। अर्थात् पहले सारे देश में खूब सफ़ाई हो और फिर एक नियत दिन पर सारे देश में लोग अपने अपने घरों में हवन करें और भिन्न भिन्न स्थानों में खूब अग्नि प्रज्वलित की जावे और साथही "प्रार्थना" हो, तो, जैसा कि उक्त प्रकार गवर्नमेन्ट ने अनुभव करके देखा है कि धुएं से प्लेग नहीं होता है, एक ओर तो सफाई, दूसरी ओर धुआं और वह भी सुन्दर पदार्थों का, तीसरे अग्नि की गरमी और फिर सर्वोपरि "प्रार्थना" या" Will power के पवित्र और परम बलवान् प्रभाव। इन सबसे संभव था कि प्लेग से और और अनेक विकारों से देश मुक्त होकर पवित्र होजाता, और बहुत से महान् लाभ देश को तथा सारे संसार को पहुँचते। परन्तु इस पर कोई आन्दोलन न होने से कोई काम नहीं हुआ। क्या अच्छा हो कि अब भी हर साल पहली जनवरी या पहली अप्रेल या होली या दिवाली को यह काम हो जाया करे और सारे देशों में हुआ करे। हमारी सरकार इस पर ध्यान दे तो बहुत अच्छा हो! क्या हमारे कौंसिल के मेम्बर कृपा करके इस ओर ध्यान देंगे? और

नैतिक अग्निहोत्र अवश्य सब को करना उचित है, इससे कारबोनिक-ऐसिड फैलने का भय जिसका कभी कभी बहाना किया जाया करता है सर्वथा ग़लत है।

तीसरा यज्ञ पितृयज्ञ है, चौथा बलिवैश्वदेव और पाँचवाँ अतिथि-यज्ञ है और ये सब बहुत ही बड़े आवश्यकीय हैं।

इन यज्ञों के संस्कार बालकों के हृदयों में आरंभ से उत्पन्न होने का यत्न होना उचित है। इसलिए और बातों के अतिरिक्त हमको स्वयं आदर्श बन कर भी उनको इस विषय में शिक्षा देनी चाहिए।

चौथा-यज्ञ संस्कार हैं। इनकी संख्या सोलह है कि जो सब के सब बड़े उत्तम और महान् लाभ के कारण होते हैं। परन्तु उनके इस समय वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। उनमें से केवल दो की ओर आप का ध्यान दिलाना आवश्यक है; एक गर्भाधान और दूसरा उपनयन-संस्कार। मैं उचित समझता हूँ कि पहले उप-नयन के सम्बन्ध में कुछ अपने विचार प्रकट करूँ। हमारी वैश्य जाति में इस संस्कार की चाल बहुत कम हो गई है, परन्तु सब जानते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य जो द्विज कहलाते हैं, तो उनकी द्विज संज्ञा उसी समय से होती है कि जब उनका उपनयन-संस्कार हो चुकता है। इस संस्कार से पहले वे शूद्र ही गिने जाते हैं "जन्मना जायते शूद्रः" हमें बिना इस संस्कार के अपने को द्विज या वैश्य कहने का अधिकार ही नहीं है। परन्तु हमारी जाति में से इसका प्रचार बहुत कुछ कम हो गया है। बहुत लोग तो इस बात की तरफ ध्यान भी नहीं देते हैं, कि उनको जनेऊ लेना चाहिए। बहुत से ऐसे हैं कि जिनके परिवार में दैवगति से कोई एक या दो या शायद अधिक आदमी ऐसे मृत्यु को प्राप्त हो गये जिन्होंने जनेऊ लिया था, और उनके परिवार के लोग यह समझ बैठे कि जनेऊ ही मृत्यु का कारण

हुआ । मानो जनेऊ न लेते तो कदापि मृत्यु न होती, और जनेऊ लेना कम से कम उनके परिवार के लिए अशुभ और अमंगलकारी समझा जाने लगा । जनेऊ न लेते हुए भी ये लोग हिम्मत करते हैं कि उनके सम्बन्ध वैश्य जाति में हों और उनको कोई शूद्र न कहे । अस्तु, मेरा यह उद्देश्य नहीं है कि एक और नया फ़िरका क़ायम करने का एक और नया कारण उत्पन्न हो और सम्बन्ध आदि करने में और भी दिक्कत पड़े । परन्तु हर एक वैश्य को जिनकी उम्र बहुत ज्यादा हो गई है उनको भी और कम उम्र वालों को भी यज्ञोपवीत तो अवश्यमेव लेना ही चाहिए । देखियेगा, हज़ारों बढ़ई लोग अपने आपको धीमान् ब्राह्मण कह कर सब जनेऊ पहिनने लगे हैं, संध्या करने लगे हैं और उनके आचरण हृदय और हौसले भी इसके कारण ऊँचे हो गये हैं और उनमें से बहुत से वैश्यों को छोटा समझने लगे हैं और हमारे आर्य्यसमाजी बहादुर तो प्रायः कितने शूद्रों और अछूतों तक को भी जनेऊ पहना देते हैं और वे सन्ध्या आदि उत्तम काम करनेवाले बन जाते हैं और मांस मद्य आदि तक को छोड़ देते हैं । बस, शूद्र और अछूत तक तो जनेऊधारी और सदाचारी बन जायँगे और वैश्यों को छोटे समझने लग जायँगे और वैश्य बेचारे कोरे रह जायँगे । जनेऊ जैसी चीज़ मृत्यु का कारण हो, ऐसा समझना भारी ग़लती है । ऐसे धर्म के काम कि जिसमें अत्यन्त पवित्र कार्यवाही संस्कार के समय होती है और जिसमें बड़े बड़े सुन्दर आशीर्वाद आचार्य आदि के मिलते हैं, जैसा कि आगे लिखे हुए श्लोक से प्रकट होगा, ऐसे काम से मृत्यु रुक जावे तो आश्चर्य नहीं । याद रहे मृत्यु जनेऊ से कदापि नहीं होती और न हो सकती है । यदि जनेऊ लेने के पश्चात् कोई एक या अधिक दशाओं में मृत्यु हो भी जावे तो जनेऊ जैसे शुभ और धर्म कृत्य को कदापि उसका कारण

नहीं समझना चाहिए। द्विज का अर्थ है वह व्यक्ति जिसका दूसरी बार जन्म हुआ हो। उपनयन-संस्कार के द्वारा मनुष्य के भीतर संस्कार उत्पन्न किया जाता है कि उसका जन्म मानो ईश्वर के घर में हो गया है। उपनयन के समय तक उसकी समझ इतनी पक जाती है कि वह अपने आपको द्विज समझ सके। और ऐसा समझने से महान् आनन्द और अधिकारों का लाभ उठा सके। यज्ञोपवीत देते समय ब्रह्मचारियों को उपदेश द्वारा **प्रायः बड़ी कठिन ज़िम्मेदारियों** का मानो एक भय दिखाया जाता है; परन्तु उसके साथ यदि उनको यह भी बतला दिया जाय कि वे द्विज अर्थात् ईश्वर के पुत्र हैं तो उनको उन ज़िम्मेदारियों के विषय में भय के बदले महा-शान्ति, बड़ा भरोसा और आनन्द का ज्ञान हो जावे और, जैसा कि छोटी संध्या के सम्बन्ध में निवेदन हुआ है, उनके जीवन बड़े आनन्द-मय और संसार के लिए मंगल-कारी बन जाँय।

मित्रगण! इस विषय में मैं अपने सम्बन्ध में थोड़ा सा कहने की आज्ञा चाहता हूँ। जिस समय मुझको अपने यज्ञोपवीत का किंचित् भी ध्यान आ जाता है तो पूछिये नहीं कि मेरी दशा क्या आनन्द की होती है। तुरंत ही मैं अपने आप को द्विज या ईश्वर का पुत्र और उसके आशीर्वाद का पात्र समझने लगता हूँ और यज्ञोपवीत पहनने के समय जो यह श्लोक पढ़ा जाया करता है कि:—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतंबलमस्तु तेजः॥

इसका संक्षिप्त भावार्थ यह है कि यह यज्ञोपवीत कि जो प्रजा-पति परमात्मा के साथ उत्पन्न हुआ है, परम पवित्र है वह आयु की वृद्धि करने वाला, मुक्ति, पवित्रता, बल और तेज का देने वाला होवे।

इस श्लोक का भाव एक दम मेरे हृदय में आकर कितना अधिक आनंद, भरोसा, हिम्मत और हौसला आदि मेरे भीतर उत्पन्न करने का कारण होता होगा, इसका अनुभव आप स्वयं कर लीजियेगा।

कोई कोई लोग जनेऊ इसलिए भी नहीं लेते हैं कि उसमें खर्च ज्यादा पड़ता है। परंतु जैसा कि विवाह के विषय में कहा जाया करता है, कि "सेर भर मोतियों में विवाह और सेर भर चावलों में विवाह" ऐसे ही यज्ञापवीत में रुपया ख़र्च किये बिना काम हो सकता है। बल्कि मेरी राय तो यह है कि रुपया ख़र्च करना ही नहीं चाहिये, धन वालों को चाहिये कि ऐसे अवसरों पर आप बहुत थोड़ा रुपया खर्च करके गरीब भाइयों के लिए स्वयं आदर्श बनें और उनके लिए यज्ञोपवीत लेने का अवसर दें और सुगमता उत्पन्न करें। किसी के पास धन हो तो और कामों में ख़र्च कर सकता है। रुपये के भय से यज्ञोपवीत जैसी वस्तु से विहीन रहना कैसे शोक की बात है? मैंने कई उपनयन-संस्कार देखे हैं कि जिनमें दो चार रुपये से अधिक खर्च नहीं हुए हैं। किसी किसी महाशय को यज्ञोपवीत सम्बन्धी क्रियाएँ कठिन प्रतीत होना यज्ञोपवीत के न लेने का कारण होता है। प्रथम तो ब्राह्मणादि इन क्रियाओं के भय से यज्ञोपवीत का त्याग नहीं करते, दूसरे यज्ञोपवीत-सम्बन्धी क्रियाएँ और संध्या आदि ऐसी हर्षदायिनी, लाभदायिनी और मनुष्य को ऊँचा उठाने वाली हैं कि इन्हीं के प्रेम में बढ़ई और शूद्रादि जनेऊ लेते हैं।

इस विषय में ज्यादा न कहता हुआ मैं बड़े जोर से सिफारिश करता हूँ कि प्रत्येक वैश्य बड़े छोटे को यज्ञोपवीत अवश्य लेना चाहिये।

अब दूसरे संस्कार की ओर आपका ध्यान दिलाना उचित समझा है। गर्भाधान संस्कार यदि शास्त्र के आज्ञानुसार होने लगे तो संसार

स्वर्ग ही न बन जावे ? यह केवल हिन्दू ही जाति का गौरव है कि उनके शास्त्रों में यह शिक्षा दी गई है कि विवाह पाशविक इच्छाओं के पूरा करने या विषय-भोग के लिए नहीं है, वरन विवाहित पुरुष और स्त्री का संयोग केवल सन्तानोत्पत्ति के निमित्त होता है। पुरुष की आयु पच्चीस वर्ष या कम से कम इक्कीस वर्ष से और स्त्री की आयु सोलह वर्ष से कम न हो और जब स्त्री ऋतुगामिनी हो तभी यह संस्कार होता है। इस विचार को मन में लाकर कि सन्तान जो उत्पन्न हो तो बल, बुद्धि, भक्ति, आदि गुणों से सम्पन्न, दीर्घ आयु वाली, परिवार के नाम को प्रकाश करने वाली, माता-पिता को ही नहीं किन्तु सारे संसार को सुख पहुँचाने वाली हो ~~विवाह-सम्बन्ध होना चाहिये~~। इस इच्छा की पूर्ति के निमित्त उपासना, अग्निहोत्रादि धर्मकार्य्य होते हैं कि जिनके द्वारा ईश्वर के आशीर्वाद का निश्चय हो सके। तब बड़े शुद्ध और पवित्र भाव से स्त्री और पुरुष का संयोग होता है। उसके पश्चात् तीन साल तक कुछ वास्ता विषयभोग का नहीं रहता है, जब बच्चा पैदा हो कर सवा दो वर्ष का हो जावे तब फिर यह संस्कार होता है। और दूसरी बार के संस्कार के पश्चात् जब बच्चा उत्पन्न होवे, तब तक पहला बच्चा इस योग्य हो जाता है कि उसको अपनी माता के दूध की आवश्यकता न रहे। जल्दी जल्दी बच्चे पैदा करने से उनको अपनी माता का दूध काफी समय तक न मिलने से वे कमजोर रहते हैं। इस प्रकार जितने बच्चे पैदा करने हों उतनी वार स्त्री पुरुष का संयोग होता है। शास्त्र कहते हैं कि गर्भाधान के अतिरिक्त जो पुरुष अपनी स्त्री के साथ भोग करता है उसको उतना ही पाप है कि जितना अन्य स्त्री के साथ भोग करने से होता है। और इस संस्कार पर दृढ़ रहने वाले पुरुष और स्त्री गृहस्थी ब्रह्मचारी कहलाते हैं। यह गृहस्थी और उनकी सन्तान कैसी बलवान् होगी इसका विचार आप स्वयं कर

लीजिये। अमेरिका में अब हमारे शास्त्रों की यह बात ज्ञात होने पर वहाँ के लोग इस प्रकार की गृहस्थी ब्रह्मचारी बनने लगे हैं और उसका फल भी वेही पा रहे हैं।

मित्रो, यह आपकी हिन्दू जाति के ग्रन्थों की धर्म्मशिक्षा का गौरव है और किसी धर्म्म में ऐसी शिक्षा नहीं है। परन्तु इस जाति की धर्म्म-शिक्षाओं का जितना ही अधिक गौरव है, दुर्भाग्य से हम उन महा उत्तम शिक्षाओं पर उतने ही कम चलते हैं। यह सच है कि एक समय हमारे देश में ऐसी आज्ञा थी कि जब हमारे पूर्वजों ने यह उचित समझा था कि लड़कियों के विवाह छोटी उमर में कर दिये जावें। उसी समय में शायद यह श्लोक बनाया गया था कि:—

"अष्टवर्षा भवेद्गौरी, नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत् कन्या, तदूर्ध्वं च रजस्वला॥"

इसके अनुसार आठ वर्ष से दश वर्ष तक की उमर में लड़की का विवाह न कर देना महा पाप समझा जाता था। कारण यह था कि मुसलमानों का जमाना था और उनके उस वक़्त के कानून के अनुसार विवाहिता स्त्री को तो कोई कुछ नहीं कह सकता था, परन्तु कुमारी लड़की को यदि कोई पकड़ कर मुसलमान बना लेता था और उससे शादी कर लेता था तो ऐसा करना सरकारी कानून के खिलाफ़ नहीं समझा जाता था। परिणाम इसका प्रायः यह होता था कि मुसलमान लोग लड़कियों को जबरदस्ती पकड़ कर उनसे शादी कर लेते थे। इस कारण छोटी उमर में लड़कियों की शादी कर देना उस समय नितान्त आवश्यक और बुद्धिमत्ता की बात थी परन्तु तब भी विवाह के पश्चात् द्विरागमन बहुत देर पीछे हुआ करता था। नौ दस वर्ष की उम्र में

शादी होने से सात वर्ष पीछे मुकलावा होता था, तो उसमें हिन्दूधर्म्म की असली शिक्षा पर चलने या गर्भाधान संस्कार के शास्त्रोक्त रीति से होने का अवसर पैदा हो जाता था। ऐसे समय में लड़कों की भी शादी छोटी अवस्था में उनके कन्याओं के योग्य होने के विचार से होती थी। अब ईश्वर की कृपा से जमाना और है। इस समय एक ऐसी अच्छी गवर्नमेन्ट का राज्य है कि किसी को अपनी लड़की आदि के विषय में किसी प्रकार का भय नहीं है। अब जरूरत नहीं है कि छोटी लड़कियों का विवाह किया जाय। परन्तु यदि कोई कहे कि विवाह जल्दी हो जावे और मुकलावा पीछे हो जावे तो कुछ हर्ज नहीं। इस विषय में विचार के योग्य बात यह है कि छोटी उम्र में शादी करने से संभव है कि लड़का या लड़की मुकलावे से पहले मृत्यु को प्राप्त हो जावें तो विवाह में जो ख़र्च वगैरः हुआ वह बरबाद गया और प्रथम तो बार बार लड़के का विवाह भी होना कठिन है परन्तु लड़की बेचारी तो जन्म भर के लिए विधवा हो जाती है। सनातन-धर्म्मियों में यदि विधवा का पुनर्विवाह वर्जित है तो उचित है कि वे ऐसा यत्न करें कि विधवाएँ कम हों। छोटी उम्र की शादी करना विधवा बनाने की मानो एक फैक्टरी जारी करना है। आर्य्यसमाज के जो प्रधान लीडर हैं उनका यह मत है कि यदि अक्षतयोनि विधवा को ब्रह्मचारिणी रहने में कठिनाई हो और यदि उसकी इच्छा हो तो उसका पुनर्विवाह हो जाना चाहिये। वे हरगिज़ नहीं कहते कि बाल बच्चों वाली विधवा स्त्रियों का पुनर्विवाह हो। और न वे कहते हैं कि जो कोई अक्षतयोनि विधवा ब्रह्मचारिणी रहना चाहे उसका भी बलपूर्वक पुनर्विवाह कर दो।

वे कहते हैं कि इस बात को विचार करके जैसा कि बहुत बार देखा जाता है कि बेचारी विधवाएँ अन्य जाति वालों के साथ चली

जाती हैं और कितने प्रकार के अनुचित काम कर बैठती हैं कि जिनको सुन कर रोंगटे खड़े होते हैं, उन अक्षतयोनि विधवाओं का विवाह हो जाना ही उचित है, कि जो ब्रह्मचारिणी रहना पसन्द न करें। परन्तु सनातनधर्म्मी भाई कि जिनके बीच में सरकारी मनुष्यगणना के अनुसार बहुत विधवाएँ एक एक साल की उम्र तक की हैं और पांच साल और सात साल की उम्र की विधवाओं का तो कहना ही क्या है, विधवाओं के पुनर्विवाह से तो विरोध करते हैं पर विधवा बनाने का कारखाना या फैक्टरी उन्होंने जारी कर रक्खी है। उनको चाहिये कि छोटी उम्र में शादी न करें। साथ ही विधवाओं के भीतर पवित्र भावादि उत्पन्न करने और अपवित्र भावों के रोकने का भी प्रबन्ध होना उचित और अत्यन्त आवश्यक है। इस विषय में स्त्री-शिक्षा और दान-प्रणाली के सम्बन्ध में कुछ संक्षेप से कहा गया है। इसके अतिरिक्त यह भी होता है कि विवाह के पश्चात् मुकलावा भी जल्दी हो ही जाता है और उससे जो जो हानि पहुँचती है उसको सब ही जानते हैं। ग्यारह ग्यारह और बारह बारह वर्ष की उम्र में बेचारी लड़कियों के बच्चे पैदा हो जाते हैं। भला क्या तो बच्चे होंगे और क्या उन बच्चों वाली लड़कियों की तन्दुरुस्ती होगी? हज़ारों हज़ार स्त्रियाँ इस तरह बेचारी पहले या दूसरे जापे में समाप्त हो जाती हैं। और जो जीती रहती हैं उनका जीना मरने से भी ज्यादा दुःखदायी होता है।

बड़ी उम्र में शादी करने का एक फायदा यह भी है कि जो रुपया छोटी उम्र में शादी करने में ख़र्च होता है उसका कई साल का सूद बच जाता है।

इस विषय में मैं एक बात की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ— कि विवाह से पहले लड़की का रजस्वला हो जाना माता-पिता आदि के लिए बड़े पाप का कारण समझा जाता है। विवाह होकर गौने से

पहले यदि वह रजस्वला हो जावे तो माता-पिता को कोई पाप नहीं है परन्तु विवाह से पहले उसका रजस्वला होना माता-पिता के लिए महा पाप है। यह एक ऐसी बात है कि जो मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार उसी मुसलमानी जमाने में जारी हुई होगी और अब इसके अनुसार चलना सर्वथा अनुचित है और बेचारी ऐसी बाल-विधवाओं के रजस्वला हो जाने से कि जिनका पति के साथ कभी संयोग न हुआ हो उससे भी किसी को पाप होता होगा या नहीं इस विषय में लोगों का जो मत है मैं उसको नहीं जान सका हूँ। इसके सिवा आज कल के जमाने में कन्यायें रजस्वला भी जल्दी अर्थात् छोटी उम्र में होने लगी हैं। इसका कारण यह है कि उनके सामने सीठने, गन्दे गन्दे गीत, रंडियों के नाच आदि ऐसे ऐसे कामोद्दीपक कार्य्य होते हैं कि उनके भाव बिगड़ने से रजस्वला होने का समय जल्दी आ जाता है। यदि इन बातों से वे दूर रहें और उनके हृदय पवित्र रहें तो वे कभी इतनी जल्दी रजस्वला नहीं होंगी।

एक और बात ध्यान देने योग्य है कि लोग कहते हैं कि शास्त्रों की यह शिक्षा कि गर्भाधान के समय ही स्त्री-पुरुष का संयोग हो और समय न हो यह महा कठिन बात है और विशेष कर आज कल के ज़माने में इस पर चलना बहुत कठिन है। प्रायः यह भी कहा जाता है कि इस ज़माने में ज़्यादा उम्र तक बिना शादी के रहना कठिन है। यह बात ठीक है। पहले ज़माने में जब कि लोगों के हृदय पवित्र रहा करते थे और उनके प्रभाव से वायु और आकाश आदि में सुन्दर गुण आया करते थे, जब कि यज्ञ हवन आदि के कारण अन्न, जल, वायु आदि में सतोगुण भरा होता था कि जिससे शुद्ध भाव मनुष्यों के भीतर उत्पन्न होते थे, तब भी विश्वामित्र जैसे समाधि लगाने वाले महा पुरुष तक को कामदेव ने विजय कर लिया। और आज कल के

ज़माने की दशा तो बहुत ही, और सब प्रकार से विपरीत है। आज कल पूर्व-कर्मों के संस्कारों, छोटी अवस्था के विवाह, निर्बल माता-पिताओं की संतान होने, गर्भाधानादि १६ संस्कारों के अभाव या उनके विपरीत प्रकार से होने (जैसे जातिकर्म, यज्ञोपवीत और विवाह-संस्कारों पर रंडियो का नाच आदि होना), और यज्ञ हवन आदि (जिनके अनेक फलों में एक यह भी है कि वायु, जल और अन्न शुद्ध और सतोगुणी और बलवान होते हैं) इनके न होने के कारण और इसी प्रकार के और कारणों से मनुष्यों के अंदर आत्मिक निर्बलता होने से नौ जवान लोगों के लिए, वास्तव में, कामदेव को विजय करना, बहुत कठिन काम है। और उनके साथ हमारी पूरी सहानुभूति है परन्तु इस विषय में मेरी प्रार्थना यह है कि जबकि इन सब बातों का अभिप्राय वीर्य्य की रक्षा करना है तो विवाह होने की दशा में तो वीर्य्य की रक्षा करना अत्यन्त ही कठिन है। जिस पुरुष का विवाह नहीं हुआ हो, वह यदि किसी जगह सो रहा हो और आधी रात के समय जाग पड़े तो प्रथम तो स्त्री पास न होने के कारण अपवित्र भाव ही मन में उत्पन्न नहीं होते, दूसरे वह ऐसा समय होता है कि न वह स्त्री को बुला सकता है और न कहीं जा सकता है, और उसके लिए किसी अपवित्र इच्छा को पूरा करना उस समय प्रायः कठिन ही होता है। परन्तु विवाहित पुरुष को हर प्रकार की सुगमता होने के कारण उसका बचाव कठिन है। विवाहित लोगों की दशा, अग्नि और घी के इकट्ठा होने के समान होती है और उसके साथ प्रायः स्त्री की ओर से प्रेरणा होना उस कठिनता को और भी अधिक बना देता है। इसलिए शादी न होने की दशा में वीर्य्य की रक्षा में अधिक सुभीता है।

विवाहित पुरुषों को मैं यह इशारा किया करता हूँ कि स्त्री को

शास्त्रों में लक्ष्मी और माता के समान लिखा है। विवाह में फेरे होने के पश्चात् वर के पिता से लक्ष्मी आये की दक्षिणा और इनाम माँगा जाया करता है। उधर स्त्री के लिए पति विष्णु भगवान् के समान समझा जाता है; और "राम ते अधिक राम कर दासा। उनते अधिक राम कर पुत्राः" और "सर्वस्याभिभवं हीच्छेत् पुत्रादिच्छेत् पराभवम्" जैसे वचनों आदि के अनुसार वे लक्ष्मी और विष्णु से बड़े नहीं तो उनके समान तो हैं ही, और शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार स्त्री और पुरुष के बीच में यदि गर्भाधान संस्कार होवे अर्थात् सृष्टि को बढ़ाने और सुन्दर सन्तान द्वारा सहायता पहुँचाने के लिए संयोग होवे, तो वह एक बड़ा धर्म्मकार्य्य समझा जाता है। और यदि केवल मन की इच्छा पूरी करने के लिए संग होवे, तो पुरुष का लक्ष्मी माता के साथ और स्त्री का विष्णु भगवान् के साथ भोग करने के समान महापाप गिना जाने के योग्य है।

लड़कों और लड़कियों को गुरुकुल, ऋषिकुल, आचार्य्यकुल, और अच्छे अच्छे बोर्डिंग हाउसों आदि में रखने से भी उनके वीर्य्य की रक्षा होने में बहुत सहायता मिलती है और हमारे देश में ऋषिकुल आदि अनेक स्थापित होने चाहिये कि जिनमें कुमार और कन्याएँ और बालविधवाएँ रह सकें। जो कोई इसमें सहायता करता है वह बहुत ही उपकार का काम करता है।

भूषण और शृङ्गार भी लड़कों, लड़कियों, पुरुषों और स्त्रियों के लिये वर्तमान समय में वीर्य्य की रक्षा में हानिकारक ही हैं। यह सच है कि कर्णभेद संस्कार आदि और श्री महाराज रामचन्द्र आदि का कानों में कुंडल आदि पहनना, सोने चाँदी आदि के पृथक् २ अंगों से संयोग रहने के गुण इत्यादि बहुत सी बातें ऐसी हैं कि जो

भूषणादि के पक्ष में कही जा सकती हैं। परन्तु मित्रगण ! वे समय लद गये कि जब किसी को भूषणादि से अलंकृत देखकर लोगों में मा, बहिन या बेटी आदि के भाव पैदा हुआ करते होंगे। उस समय की बातें भी हम रामायण में पढ़ते हैं कि जब किसी ऋषि ने पूछा कि मेघनाद जैसे ग्रहस्थी ब्रह्मचारी को किसने मारा और उनको उत्तर मिला कि लक्ष्मण जी ने, तो उन्होंने अचंभा प्रकट किया कि चाहे लक्ष्मणजी ने स्त्री-संग नहीं किया परन्तु सीताजी के साथ रहने मात्र के कारण वे ऊर्ध्वरेता और पूर्ण ब्रह्मचारी कैसे रहे होंगे और मन में अपवित्र भाव मात्र आजाने के कारण उनका वीर्य्य मस्तक से नीचे कभी कभी चल ही पड़ता होगा और ऐसी दशा में वे मेघनाद जैसे वीर को कैसे मार सकते थे। तो उनको बतलाया गया कि सीताजी के हरे जाने पर जब महारानीजी ने अपना पता देने के लिए भूषणों को भिन्न भिन्न स्थानों पर डाल दिया और वे भूषण महाराज रामचन्द्र और लक्ष्मणजी को रास्ते में मिले तो रामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी से उन भूषणों के पहचानने के लिए कहा तो लक्ष्मणजी ने उत्तर दिया कि "मैं केवल पैरों के भूषणों को पहचान सकता हूँ, क्योंकि मैं माता सीताजी के पैरों के ही दर्शन करता था, ऊपर के अंगों के दर्शन नहीं करता था।" उसी से उनका ब्रह्मचर्य्य पूर्णतया स्थित रहा। इससे सिद्ध होता है कि उस समय में भी भूषण और शृङ्गार बल्कि रूपवती स्त्री के दर्शन तक पूरे ब्रह्मचर्य्य में हानिकारक होते थे और अब तो समय और ही है। अब तो जो कुछ गुण भूषणों के प्रयोग में होते हैं उनकी अपेक्षा अवगुण इतने अधिक हैं कि उन गुणों का परित्याग ही भला है। भूषण पहनने वाले और उनको देखने वाले दोनों के ही अंदर बुरे भाव पैदा होते हैं और नाहक लोगों के दिल बिगड़ते हैं और प्रायः लोगों के ऊर्ध्वरेता होने में तो फ़रक़ आही जाता है।

या इसके अतिरिक्त जो लोग चोर या डाकू नहीं भी हैं या जिनके अन्दर चोरी या डाके के संस्कार नहीं भी होते, उनमें भूषणों को देख कर वे संस्कार आजाते हैं। इस प्रकार लोगों के अन्दर विषय-भोग और चोरी के संस्कार उत्पन्न करने का पाप भूषणवाले मुफ़् में ही अपने सिर लेते हैं। और सुनारों के खोट मिला देने, टांके, गढ़ाई, ज़ेवर के घिसने और ब्याज का नुकसान आदि का तो कहना ही क्या है। पुरुषों को बाल इतने छोटे रखने चाहिये कि मांग न निकल सके और स्त्री-धन आदि को सेविंग्सबैंक आदि में रक्खा जा सकता है। और माता-पिताओं को कम से अपने बच्चों के लिए इस गर्भाधान संस्कार और ग्रहस्थी-ब्रह्मचर्य्य पर पूरी तरह चलना चाहिये कि जिससे उनके लिए एक एक आदर्श उपस्थित हो। ऐसेही उनको व्यायाम, सन्ध्या आदि करके बच्चों के आगे आदर्श रखना चाहिये (देखो कहानी खोंचे वाले की और वृक्ष को खाद देने की।) परन्तु मैं आप ही कहता हूँ कि ये सारी बातें कहने के लिए तो ठीक हैं किन्तु कामदेव जैसे महा बलवान् शत्रु को वश में करने के लिए बातों से काम नहीं चलेगा। हज़ार बातें आप लोगों को समझावें वे आपके समझाने पर वीर्य्य के नाश की बड़ी हानि और वीर्य्य की रक्षा के बड़े और महान् लाभ को समझ भी लेवें और मन में संकल्प भी वीर्य की रक्षा का करलें; परन्तु जब कि विश्वामित्र जैसे महा-पुरुषों को उस यज्ञ आदि के ज़माने में काम-देव ने दबा लिया तो आज कल के निर्बल आत्मा वाले लोगों के संकल्पों से क्या बन सकता है ? पांडव-गीता में दुर्योधन का यह वाक्य साधारण मनुष्यों की और विशेष कर कलिकाल के दुर्बल आत्माओं की दशा को ठीक ही प्रकट करता है कि :—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति-
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥ १ ॥

इसका तात्पर्य्य यह है कि मैं धर्म को जानता हूँ परन्तु मुझ से धर्म होता नहीं और मैं अधर्म को भी जानता हूँ, परन्तु मैं उससे बच नहीं सकता। कोई ऐसा दैव मेरे हृदय के अन्दर बैठा हुआ है कि जैसा कुछ वह मुझसे कराता है, वैसा ही मैं करता हूँ। इस बात को विचार कर घबराहट ज़रूर पैदा होती है और काम आदि जैसे बलवान् शत्रुओं को विजय करने के लिए आत्मिक बल और उस दुर्योधन वाले दैव से अधिक बल-वाली शक्ति की आवश्यकता अधिकतर प्रतीत होती है। इधर तो ये बातें और उधर मेरे सिर में तो वही एक बात छोटी सन्ध्या की घुसी हुई है जिस को शरणागत धर्म कहना चाहिए और जिसको व्यवहार कर मैं आप भी लाभ उठा रहा हूँ। विश्वासी छोटी या बड़ी सन्ध्या करनेवाले पुरुष को, जब कभी अपनी या अपने बच्चों या बजुर्गों या बिरादरी, जाति या और किसी की ओर से कोई दुःख या सोच होता है तो वह तुरन्त फ़ौरन से पहले उस दुःखविनाशक, सब सुखदायक, शान्ति के भंडार अपने पिता की शरण में या उसके चरणों में बल्कि गोद में "सब आपके भक्त बन जावें" कहता हुआ पहुँच जाता है कि जहाँ उसको मुक्ति के और परिपूर्णता के भंडार अपने ऊपर न्योछावर होते हुए प्रतीत होते हैं। और अपनी और अपने सब प्यारों की, अपनी जाति की, अपने वसुधा रूपी कुटुम्ब की, बाबत उसको " माशुचः " की आकाशवाणी हृदयाकाश से आती

हुई प्रतीत होती है। उसके ख्याल ऊँचे हो जाते हैं, और जब उसको इस प्रकार के ऊँचे दर्जे के आनन्द का स्वाद आने लगता है तो वह सांसारिक विषयभोग आदि को तुच्छ समझने लगता है। वह संसार की समस्त घटनाओं के अन्दर से दुःख, सुख, पाप, पुण्य, जीवन, मरण, आदि प्रत्येक घटना के अन्दर से, अपने और अपने सब प्यारों के लिए अनन्त मंगलकारी मस्मासु निकलते हुए देखता है, और आनन्दित होता हुआ, आत्मिक, शारीरिक और मानसिक बल भी प्राप्त करता है कि जो काम क्रोध आदि को या दुर्योधन वाले दैव को विजय करने में उसके सहायक होते हैं और यह बल उसके सब प्यारों के अन्दर भी प्रवेश करता जाता है कि जिससे वे भी बलवान् होकर कामदेव आदि को जीतने के लिए शनैः शनैः समर्थ होते जाते हैं।

मैं इतना और निवेदन करने की आज्ञा चाहता हूँ कि मुझको एक संस्कृत के बड़े विद्वान् ने मेरे प्रश्न करने पर बतलाया था कि ब्रह्मचर्य्य शब्द का अर्थ वीर्य्य की रक्षा का नहीं है। वीर्य्य की रक्षा और और अनेक बातें तो ब्रह्मचर्य्य के फल हैं। ब्रह्मचर्य्य का अर्थ है ब्रह्म में विचरना। ब्रह्म नाम परमात्मा का है और ब्रह्म नाम विद्या और वेद का भी है। विद्या में या वेद में विचरना या परमात्मा में अपना जीवन व्यतीत करना, अपने भीतर बाहर सब ओर उसको विराजमान और उस-सब प्राणियों से "ओंभूः" आदि शब्द कहते हुए अनुभव करना, वास्तव में एक ही बात है। विद्या और वेद हमको ईश्वर का ज्ञान देते हैं और हमको बतलाते हैं कि वह हमारा पिता है, हर समय का हमारा साथी, रक्षक और सहायक है, हम हर समय उसका वही मधुर "माशुचः" और "ओंभूः" शब्द सुनने के अधिकारी हैं। यही है ईश्वर में विचरना। या यों कहिए कि छोटी सन्ध्या हमको ब्रह्म में विचरने वाला या ब्रह्मचारी

बना देती है कि जिससे हमारे हृदय में आनन्द द्वारा आत्मिक बल और अनेक गुण आ जाते हैं हमारे विचार उच्च होते जाते हैं और वीर्य्य की रक्षा, सत्यभाषण प्रेम, निष्काम कर्म करने का उत्साह, हिम्मत, हौसला आदि अनेक बातें हमारे भीतर उत्पन्न होती जाती हैं। इसी बात से विवाहित मनुष्य के गृहस्थी ब्रह्मचारी बन जाते हैं, और ब्रह्म में विचरने रूपी ब्रह्मचर्य्य के पालन करने का प्रत्येक मनुष्य चारों आश्रमों में अधिकारी है। यदि हम बच्चों को इस प्रकार ब्रह्मचारी बना देवें तो उनके वीर्य्य की रक्षा आदि सारी ही बातें हो जावेंगी और वे बड़े होकर अपने कुल के दीपक नहीं बनेंगे किन्तु संसार में सूर्य्य की भांति तेज से प्रकाशित होंगे।

वैश्य कानफरेन्स सर्वहितकारिणी है। मित्रगण! केवल एकही विनय और है और मेरी बकवाद समाप्त है। हम पर प्रायः लाञ्छन लगाया जाया करता है कि जबकि हमको सबकी भलाई के लिए यत्न करना चाहिये तो हम केवल अपनी जाति की भलाई के लिए यत्न करते हैं। परन्तु यह लाञ्छन अनुचित है। प्रथम तो मेरी वक्तृता से सिद्ध होता है कि किसी जाति की ही नहीं किन्तु प्रत्येक व्यक्ति की भलाई सब की भलाई बिना हो ही नहीं सकती है। दूसरे सारी कान्फरेंसों की सारी रिपोर्टों को खोल कर पढ़ लीजिए और इस व्याख्यान पर भी ध्यान देकर देख लीजिए और आप कह सकेंगे कि हमारी कानफरेंस वैश्य कानफरेंस होती हुई भी सारे संसार का भला चाहती है। हम अपनी कानफरेंस द्वारा सबका ही भला करने की इच्छा रखते हैं और केवल वैश्य जाति के उपकार से हम कदापि सन्तुष्ट नहीं हो सकते हैं; और ईश्वर की कृपा से सबका ही उपकार होने का हमको निश्चय है। हम सबके भले में अपना भला समझते हैं और यदि यह कहा भी जासके कि हम वैश्य जाति ही की उन्नति का प्रयत्न करते

हैं तब भी जो जो जातियाँ अपनी उन्नति करलें तो समष्टि के कुछ अंगों की उन्नति तो हो जाती है। हाँ द्वेष या दूसरों से विरोध यदि हम करते हों तो हम पर दोष लग सकता है और ~~इसको सोचकर~~ सबकी उन्नति तो एक ही साथ होनी असम्भव है। सबकी उन्नति होवे नहीं और भिन्न भिन्न जातियाँ भी अपनी अपनी उन्नति करें नहीं तो फिर दोनों ही ओर से गये। भिन्न भिन्न जातियों का इस प्रकार कुछ करना कुछ तो है और दोष देने के बदले कुछ प्रशंसा योग्य अवश्यहै।

उपसंहार ।

मित्रगण, अब मैं इस व्याख्यान को एक अत्यन्त हर्षदायक कर्तव्य पालन किये बिना समाप्त नहीं कर सकता हूँ। वह यह है कि मैं अन्त में आपकी इस कृपा के लिए भी हार्दिक धन्यवाद दूँ कि आप इतने समय तक ऐसे शान्तिपूर्वक मेरी वक्तृता सुनते रहे। मुझसे ज्यादा कोई इस बात को नहीं जानता है कि यह वक्तृता त्रुटियों से भरी हुई है और ऐसी नहीं है कि जो ऐसी कानफरेंस में आदर की दृष्टि से देखी जा सके। इसका कारण यही है कि जैसा कि मैंने सभापति चुने जाने से पहले कई बार कहा था कि मैं विद्वान् आदि नहीं हूँ। परन्तु इतनी त्रुटियाँ होते हुए भी आपकी कृपा और प्रेम पर विचार करने पर मुझको पूर्ण निश्चय है कि जैसी कुछ सेवा मुझसे बनी है वह प्रसन्नता के ही साथ देखी जावेगी और जिस प्रकार अपने प्यारों के साधारण शब्दों को सुन कर भी मनुष्य प्रायः बड़े प्रसन्न हुआ करते हैं और उनकी अपेक्षा अन्य पुरुषों के बड़े बड़े विद्वत्ता-पूर्ण व्याख्यान भी उनको उतने प्यारे नहीं प्रतीत होते हैं इसी प्रकार आपने मेरे शब्दों को प्रसन्नता के साथ सुना होगा और मेरी त्रुटियों पर दृष्टि न डालते हुए जो कुछ भी थोड़ा बहुत इस वक्तृता में गुण पाया होगा

उससे आनंदित हुए होंगे। साथही मुझको यह भी पूर्ण निश्चय है कि ईश्वर के आशीर्वाद का बल और उसके अनेक गुण मेरे प्रत्येक शब्द में निःसंदेह और अवश्यमेव भरे हुए थे और हैं और यह व्याख्यान यदि ललित और मनोहर न भी प्रतीत हुआ हो तो भी यह फल की दृष्टि से किसी अच्छे से अच्छे व्याख्यान से कम नहीं साबित होगा। ईश्वर जानता है कि मैंने प्रेम और सेवा के भावों से प्रेरित होकर शुद्ध संकल्प से इसे तैयार किया है। और यह बात और आपकी गुण-ग्राहकता आदि सुन्दर भाव मेरे इस विश्वास के कारण हैं कि उसका फल अत्यन्त महान् होगा। मेरा पूर्ण विश्वास है कि कलकत्ते की कानफरेंस, यह भारतवर्ष के शिरोमणि नगर की कानफरेंस, इस नगर के नाम के उपयुक्त ही होगी। यह बीसवीं कानफरेंस जो वैश्य जाति के असली मेम्बरों, अर्थात् हमारे कलकत्ते के मारवाड़ी भाइयों की कृपा से यहाँ कलकत्ते में हुई है, हमारे प्रियवर भाइयों के प्रेम की शान के लायक साबित होगी। प्यारे भाइयो, यह पूर्णतया निश्चय है कि यह कानफरेंस ऐसी सिद्ध होगी कि इसके कारण आप के आगामी उद्योग अधिक ही अधिक सफल होंगे। प्यारे! कलकत्ते के निवासियो! तुमको बधाइयाँ! बधाइयाँ!! तुम्हारे परिश्रमों से जो यह कानफरेंस हुई है। यह एक स्मरणीय कानफरेंस समझी जावेगी, इसलिए जितना कुछ धन्यवाद तुमको दिया जाय थोड़ा है। तुम्हारी इस कानफरेंस के कारण आगे को होने वाली कानफरेंसें सब एक से एक बढ़ चढ़ कर होंगी। खोल दीजिए विचार और विश्वास के कानों को और सुन लीजिए! हृदय-आकाश से एक आकाशवाणी आ रही है, कि जो बड़े मधुर, अमृतमय और स्पष्ट शब्दों में कह रही है कि "हाँ प्यारे बच्चो! तुम्हारे सारे मनोरथ सिद्ध होंगे। तुम्हारे उद्योगों का फल निश्चय अनन्त, अनन्त होगा!!!" वह

आकाशवाणी कह रही है कि "प्यारे बच्चो ! यह कैसे हो सकता है कि मेरा अशीर्वाद केवल तुम्हारे सभापति के प्रत्येक शब्द पर ही क्यों बरन प्रत्येक वक्ता के प्रत्येक शब्द पर न हो। हाँ प्यारो ! तुम्हारे उद्योगों का फल निश्चय अनन्त अनन्त होगा। तुम्हारे सारे मनोरथ सिद्ध होंगे, तुम्हारी वैश्य जाति ही में नहीं किन्तु सारे संसार में मेल-मिलाप और प्रेम अवश्य होगा। हिन्दी और संस्कृत आदि विद्याएँ अवश्य उन्नति करेंगी। तुम्हारी स्त्रियां, देवियाँ और लक्ष्मियाँ बनेंगी जिनके दर्शनों से लोग कृतार्थ हुआ करेंगे। सब कुरीतियाँ दूर होकर अति उत्तम प्रकार से सारे काम हुआ करेंगे। दान सात्विक, वित्त समान, और प्रेम भाव के साथ यथोचित रीति से होगा और लोग दान देकर इतना आनन्द और लाभ अनुभव करेंगे कि वे समझेंगे कि मानों दान लेने वालों ने उन पर एक भारी उपकार किया; और अमीर ग़रीब सब सारे संसार को भक्ति का दान देने वाले बनेंगे। व्यापारादि और सब देशों के समस्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि के, सब राजा प्रजा राज्याधिकारियों आदि के, सब ब्रह्मचारी, गृहस्थी वानप्रस्थ और संन्यासी गुरु शिष्यादि के, सबके सारे काम मेरे आज्ञापालनार्थ और एक दूसरे के और सारे संसार के हितार्थ ही होंगे। बालकों की शिक्षा उससे भी उत्तम प्रकार से होगी कि जैसा तुम चाहते हो और बालक और साराही संसार तुमको अति सुन्दर मोहन रूप दीख पड़ेगा। सब देशों के राजा प्रजा आदि का परस्पर व्यवहार अति उत्तम प्रकार का होगा। सारा संसार स्वर्ग से बढ़ कर हो जायगा। जो बातें विपरीत भी दीख पड़ेंगी वे भी सब तुम्हारे मनोरथों की सिद्धि या तुम्हारे मंगल के लिए उतनी ही आवश्यक हैं जितनी वे बातें जिनको तुम बहुत अच्छी और अनुकूल समझते हो। और यह

सब कुछ मैं नहीं कर रहा हूँ ; मैंने किया तो आनन्द ही क्या आया ? आनन्द तो तुम्हारे और तुम में से प्रत्येक के करने में है और तुम्हारा रोम रोम प्रतिक्षण इस काम को कर रहा है । तुमको निमित्त बनाये बिना मैं कुछ नहीं करना चाहता हूँ । "मा शुचः" शोच मत करो और प्रसन्न हो जाओ ।"

वह आकाशवाणी यह भी कहती हुई प्रतीत होती है, कि "प्यारे बच्चो सच पूछो तो मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ कि तुमने मेरी सारी सन्तानों के महान् उपकार के लिए यह उद्योग किया है और इसके लिए तुम निश्चय ही मेरी और सारी सृष्टि की पूर्ण कृतज्ञता के पात्र हो" । ऐसे विचार मन में लाकर मैं अपने चित्त को तो प्रसन्न करही लिया करता हूँ सुनिये:—

हमको मालूम है जन्नत की हकीक़त लेकिन
दिल के बहलाने को ग़ालिब ये ख्याल अच्छा है ।

और कुछ नहीं तो दिल की बहलावट ही सही परन्तु प्यारो, यदि कोई ईश्वर है तो वह पिता ज़रूर है । और यदि एक बार उसको पिता मान लिया जावें तो मेरा कथन कदापि अत्युक्ति नहीं कहा जा सकेगा । और मेरा तो विश्वास है कि ईश्वर एक वास्तविक पदार्थ है परन्तु कल्पित भी हो, तब भी मेरा निवेदन ठीक ही है, और इस लिए बधाइयाँ ! बधाइयाँ !! हज़ार हज़ार लाख लाख बधाइयाँ आपको और मुझको, ऐसी आकाशवाणियाँ सुनने के अधिकारी होने के लिए और कानफरेंस की ऐसी बड़ी सफलता के लिए । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

आपका कृपापात्र सारे संसार का सेवक

राजकुमार मोहनबल, उपनाम बलदेवसिंह ।

मानव-धर्म-सार का शुद्धिपत्र ।

इस पुस्तक के पाठकों से निवेदन है कि पुस्तक पढ़ने के पहले वे कृपा कर अशुद्धियों को ठीक कर लें । अत्यन्त खेद है कि शीघ्रता में छपने के कारण पुस्तक में बहुत अशुद्धियां रह गई हैं ।

	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
भू०	२	२०	होयगी	होता है ।
,,	५	३	विज्ञापन	विज्ञापन दिया
,,	५	४	लिए दिया	लिए
	५	८	कि जो जिनका इस लेख में वर्णन है	कि जो
	५	११	उनके	और
	५	१३	कि	कि जिनका इस लेख में वर्णन है
	२	४	कैसी भी	कैसी भी और सारी ही
	३	८	या	यो
	३	१८	है तो	है तो प्यारे के
	५	६		
	५	१३	वेदाहमेतं	वेदाहमेतत्
	१०	६	और भी अधिक	बहुत अधिक
	१०	२०	किन्तु	और
	१०	२०	में अनेक	में और भी अनेक
	१०	२४	प्रार्थना	यह प्रार्थना
	१०	२४	से यह	की

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	२४	मिलती है कि	कि
१२	१-से-३ तक	मोरे मन—पुत्र हैं	राम ते अधिक राम कर दासा—उनते अधिक राम कर पुत्राः
१२	९	राम के या	(राम के या
१२	१३	अधिक है	अधिक है)
१३	१६	बिदा हो।	मर
१३	२०	मृत्यु का नाश हो गया है	मौत मर गइ
१३	२०	मृत्यु का नाश हो मया	"मौत की मौत"
१४	५	मानताहूं	माना जावे
१४	५	दुःख	सुख
१४	२२	के बिचार प्रगट	का प्रचार
१४	२३	मिली	मिलती
१५	५	वही यदि वास्तविक भी	वह यदि वास्तविक
१६	२४	कि बेटे या बेटी का	कि
१६	२५	प्रौढ़ किया हुआ बचन ही	यह बात निश्चय या दृढ़ हो चुकी है कि
१७	१	पदार्थ	पदार्थ बेटे या बेटी का बचन ही
१९	१	गिरजा पति	गिरिजामति *
१९	१७	दुःखों से छूटने	(दुःखों से छूटने)
१९	२१	से	से बंचित रहना
१९	२२	को बंचित रहना	को

* पृष्ठ १७ पंक्ति १९ से पृष्ठ २४ अन्त तक जो विषय है—उसको पुस्तक से पृथक् समझना चाहिए।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	१६	नहीँ	(नहीँ
२०	१६	जावेगा	जावेगा)
२२	६	हैं तो हमको	हैं । हमको तो
२५	७	के आगे	के
२६	७	प्रगट है कि	प्रगट है
२६	८	वचन	शब्द
२६	११	भाइयों और बधाइयां	भाइयों
२८	१२	आन	छूने
२८	१५	व-ला	वाला
२८	१८	परमाणु	प्रभाव
३०	५	तो	जो
३०	५	यहां तक की है कि	की है अर्थात्
३०	६	गाई ॥	गाई ॥ और
३०	७	वास्तव में थोड़ी है	,,
३०	६	तुलसी	वह कैसी साक्षात हो जाती है ! तुलसी
३१	२५	पात्न	पात्र
३२	३	प्रभाव से	प्रभाव
३४	१	की ओर	के और
३४	२२	वा सेवक	और रक्षक वा
३४	२३	बेमाही	बीमारी
३५	७	हमसे	हमको
३७	२२	कहना	करना
३८	६	को उन गुणों से	मेँ
३८	२२	आपको	हमको

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०	६	बताये	बनाये
४३	१	कामों	कानों
४३	१६	देता है"	देता है
४३	१७	है	है।"
४४	१	नोट—	नोट (२)—
४४	१३	गुणों में उन्नत होते जाते हैं	गुणों में
४४	१४	को	के
४४	१४	करते	होते
४४	१५	शायद	(यदि
४४	१५	सके कि	सके तो)
४५	८	गिरिजा पति	गिरिजा मति
४६	२	उस	और उस
४८	१६	काम	धर्म के काम
५०	२२	उसके	उनके

पृष्ठ ५२ पंक्ति २२ में "इस" शब्द से लेकर पृष्ठ ५३ पंक्ति २ के अंत तक सब काट देना चाहिए और यह कटा हुआ भाग पृष्ठ ५३ में पंक्ति ८ में "जाते हैं" के आगे आना चाहिये

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५३	२५	काम	वह काम
५४	४	कर मैं तुझ को	कर
५४	५	काट डालूंगा तेरी	तेरी
५४	६	मानेगा	मानेगा तो मैं तुझे काट डालूंगा
५५	२२	प्रेरित	प्रेरित होकर
५७	१०	अर्थात्	वा
५७	११	कस	कम
५८	५	वह वह	वह

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५८	२०	हकीकत।	हकीकत लेकिन
५६	६	उसको	उनको
६२	१३	उस	इस
६६	३	के कारण होते हैं। एक ही जाति (जैसे अग्रवाल, खंडेलवाल) के भिन्न भिन्न फ़िरकों में मेल जोल की आव-	
६६	२४	की अपेक्षा	के अतिरिक्त
६७	२४	तो	है तो
७०	७	उसके तू	तू उसके
७१	२	यदि	(यदि
७१	१०	चाहिए।	चाहिए।)
७४		एक	तक
७६	६	होती ही	ही होती
७६	१८	बहुते	बहुतेरा
८०	१	पड़ा	पड़ी
८१	२०	अधिकार	हक़
८४	५	और देश	तो देश
८४	८	दाता	दान
८५	२२	यही	यह ?
८५	२३	बनी है ! बहुत	बहुत
८७	२	रही	रही थी
८७	१२—२५	चाहिये। मेरी होना	चाहिये।
८८	१—८	चाहिये ? विशेषतः करेंगे।	
८८	अन्तिम	का	का भी
६०	२	ये	ये वे
६०	८	कि	कि वे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९३	१०	का यात्रा	यात्रा का
९३	२४	क्योंकि जो	क्या कि जो
९४	१०	से मानें पार्वतीजी	माने पार्वतीजी को
९४	१९	ज्ञानं नराणा	धर्मो हि तेषा
९४	२०	ज्ञानेन	धर्मेण
९४	२२	ज्ञान ही	धर्म ही
९४	२२	ज्ञान न	धर्म न
९५	४-५	है। ज्ञान...है।	हैं।
९५	१८	सफलता	आनन्द
९६	१७	अपने चित्त	अपनी वित्त
९६	१८	बड़े बड़े	आवश्यक
९६	१८	अन्य	शुभ
९७	९	बड़े वरदान	बड़ी बरकतों
९८	२	तो	तो क्या
१०१	४	देंने	देंने के
१०१	५	के उस	उस
१०२	१०	पास	पास से
१०३	१	बैंक	बैंक एक "दान धर्म-महासभा" नियत होकर उस सभा की ओर से
१०३	२	"दान धर्म महासभा"	"हिन्दुओं की दान-प्रणाली"
१०५	३	पाने	लाने
१०६	९	अपने सच्चे	सच्चे
१०७	७	कि इन	इन
१११	३	इन	उक्त प्रकार के गृहस्थ के
११२		यह	में यह

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११३	५	आदि	आदि में
११३	१६	प्राप्ति हो	प्राप्ति
११६	१४	औसत से	निसवतन *
११६	१६	बड़ा	बड़ी
११६	२३	उसकी	उनकी
११७	१८	चुकी	चली
११७	२०	होते थे	होते
११७	२१	सक्ता था	सक्ता
११७	२१	सक्ती थी	सक्ती
१२०	२३	जिसे	जिससे
१२१	७	आजू" ॥	आजू" ॥ (कहीं २ यह पाठ इस प्रकार है "सत्य कहो कहा मोर अकाजू)
१२१	१७	हमारे यहां	कहीं
१२१	१७	थी कि	कि
१२२	६	अेक आध वचन	उसको
१२३	१८	कदापि	अन्य दशा में कदापि
१२३	२३	उर्दू	उर्दू
१२४	५	वये	पये:
१२४	७	नहीं से	निगाहे
१२४	१२	बुज़ व	बुज़ो

* नोट—पृष्ठ ११५ पंक्ति ५ से पृष्ठ १२८ पंक्ति १५ तक—और पृष्ठ १२८ पंक्ति १६ से पृष्ठ १३४ तक—और पृष्ठ १३५ से १३८ तक—और पृष्ठ १३६ से पृष्ठ १४४ पंक्ति ७ तक—और पृष्ठ १४४ पंक्ति ८ से पृष्ठ १४७ पक्ति २१ तक—पुस्तक से पृथक विषय समझने चाहियें ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२७	७	तब तक	तब तक ही
१२६	१७	में अनु	में
१२६	१८	राग प्रगट करने लगें	प्रार्थना करें
१३०	१७	बिश्वास घातक	बिश्वास हीन
१३२	१७	इस श्लोक	श्लोक
१३२	१८	कोरे	सारे
१३२	२१	सुना	सुनता हुआ
१३३	१४	उसके	जिनके
१३३	१५	उसकी	जिस की
१३३	१८	उस की	जिस की
१३३	२१	कारण	कारण, और
१३४	१५	समझ	समझ में
१३४	१६	करोड़ों	करोड़
१३४	२३	हूं । बचावे...से	हूं
१३४	२५	लगता है	लगता है । बचावे ईश्वर हम सब को ऐसी कृतघ्नता से
१३५	१७	मां	मा
१३५	१	मां	मा
१३५	१७	भादर	मा दर
१३५	१०	है और...है	है
१३५	१७	करमा आज़ारमा	कारे मा आज़ारेमा
१३५	२१	प्यास	घास
१३६	१७	Persistential.	Penitential.
१३६	२५	तारे	के तारे
१३७	१	साथ	हाथ से

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३७	९	दे	देना
१३७	१५	ओं भूः	" ओं भूः "
१३७	१६	उसमें	इसमें
१३७	१७	माने यह शेर	यह शेर माने
१३७	१७	विश्वासी से	विश्वासी
१३७	१८	है	है ।
१३७	१८	के संबन्ध में माने यह	से
१३८	३	विचारा	बेचारा
१३८	४	बरणों	बरणों
१३८	७	उसके	इसके
१३८	१०	०	एक कवि का वचन
१३८	११	पर	पे
१३९	१४	का	का अपने को
१३९	१२	अपने परम	परम
१४०	१८	तत्व	तत्कालीन
१४०	१०	मरम	परम
१४१	३	ही कहेंगे	कहिये
१४२	१	हुए	हुए पाना
१४२	३	लाभ	राज्य
१४२	२०	साधन गये संक	साध न माने शंक
१४२	२१	माना	माता
१४३	१४	चाहे उन्हें	चाहे विश्वासियों को
१४४	३	वह	वही
१४४	३	ले	लेना ।
१४४	१५	परे	परमो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४४	१५	द्वेषः	द्वेषः
१४४	२१	अहिंसा	हिंसा
१४४	२६	कि आनन्द	कि
१४४	१७	है	आनन्द है
१४६	४	के	के साथ
१४६	१४	स्मरण करने	प्रेम पर विश्वास रखने
१४७	८	कर अर्थात्	कर
१४७	१५	समाज	समा
१४७	१६	येही	ही *
१४७	२०	कुलूबुउल	कुलूबुल
१४८	१६	हिंसा	हीनता
१४८	२०	हंमां का रेऊ महेरो...हंमां	हमा का रेऊ मेहरो...हमा
१४८	२१	मां	मा
१४६	२२	एक	एक यही
१५०	८	जिसको	जिसको
१५०	१०	कहेंगे	कहेंगे)
१५०	२१	हवा ए	रुबाय
१५०	२१	में कुनद अज़बरा ए	मेकुनद अज़बराए
१५१	१६	कि	।
१५२	५	देखो क नी	देखो कहानी
१५२	६	महल	हमल
१५२	२४	मेरी	हमारी

* पृष्ठ १४७ से १५६ तक जो विषय "प्रार्थना के विषय में कुछ विचार" है उसको पुस्तक से प्रथक समझना चाहिये ।

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५३	१८	कैसी	ऐसी
१५३	२०	जानों	जिन्दगियों
१५७	८	कि जिन	इस
१६५	१८	को उचित	के सुपुर्द उचित
१६५	१६	अपील	०
१६८	२३	परमाणु	परमाणु और प्रभाव
१७०	१७	ही है	हैं ही
१७०	२०	से	पर
१७१	२३	वक्तृता	समय
१७३	१५	सुख	पनकाल
१७५	६	चौथा	छठा
१७८	२४	अब	अब मैं
१६३	४	भी	भी और सारीही
१७६	७	विचार	इच्छा
१७६	११	इस	उस
१७६	१७	उपनी	अपनी
१७६	१०	विवाह...चाहिये	०
१७६	१६	आता	माता
१८०	५	गौरव	ही गौरव
१८१	४	उनके	उन
१८२	१६	तो	तो वे
१८७	६	कम से	कम से कम
१८८	१५	विश्वासी	विश्वासी वा
१८६	६	परमाणु	प्रभाव
१८६	२०	उस	०

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८९	२०	से	को
१९०	५	मनुष्य के	मनुष्य
१९०	१२	है मेरी	मेरी
१९०	१२	समाप्त है	समाप्त
१९१	३	इसको सोचकर	०
१९१	६	मित्रगण	परन्तु मित्रगण
१९१	६	अब	०
१९४	११	हूँ सुनिये:—	हूँ :—